मैत्रेयी पुष्पा और रीता चौधुरी के उपन्यासों का प्रतिपाद्य एवं प्रासंगिकता:

आधुनिक साहित्यिक गद्य विधाओं में से सबसे सशक्त विधा है उपन्यास । जहाँ विषय की तह तक जाने का प्रयास किया जाता है और एक निष्कर्ष प्रदान करने की चेष्टा की जाती हैं । उपन्यास साहित्य का विकास आधुनिक काल से ही माना जाता है । प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यासों की दुरवस्था से सभी वाकिफ़ हैं, जो केवल सस्ते मनोरंजन का साधन था । उनके कलम चलाने के बाद ही उपन्यास में परिवर्तन आने शुरू हुये है । इसीलिए ज़्यादातर विद्वानों ने उपन्यास के विकास के वर्गीकरण को प्रेमचंद के समय के साथ बांधकर किया हैं । रामचन्द्र तिवारी जी के शब्दों में, " प्रेमचंद-पूर्व उपन्यास-साहित्य प्रमुखतः तीन वर्गों में रखा जा सकता हैं- सामाजिक, ऐतिहासिक और घटनात्मक । इस वर्गीकरण को और अधिक विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक बनाना चाहें, तो इन प्रमुख वर्गों को उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं । उदाहरणार्थ, सामाजिक उपन्यासों के तीन उपवर्ग- 'घटना-प्रधान', 'चरित्र-प्रधान' और 'भाव-प्रधान' - मान्य हो सकते हैं । ऐतिहासिक उपन्यासों के दो उपवर्ग- शुद्ध ऐतिहासिक और ऐतिहासिक रोमांस- हो सकते हैं । इसी प्रकार घटनात्मक उपन्यासों के तीन उपवर्ग- 'ऐयारी-तिलस्मी', 'जासूसी' तथा 'साहसिक एवं चित्र-विचित्र घटनात्मक'- किये जा सकते हैं ।" [1] इसके बाद आगे देखा जाये तो सामाजिक, ऐतिहासिक, घटनात्मक, अनूदित, समस्याप्रधान, आंचलिक, मनोवैज्ञानिक, देश-विभाजन, आधुनिक-बोध, व्यंग-प्रधान, स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श -आदि भागों में उपन्यासों का विश्लेषण व विवेचन होता आ रहा हैं । बहरहाल यह कहना उचित होगा कि समाज के साथ साथ उपन्यास विधा में परिवर्तन का लहर दौड़ता हैं । इसीलिए उपन्यास में समाज का प्रतिफलन अधिक से अधिक मात्र में दिखाई पड़ता हैं ।

शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में हिन्दी और असमीया साहित्य में नारी अस्मिता के संयोजन पर प्रकाश डाला गया हैं । द्वितीय अध्याय में दोनों कथाकारों के जीवन व साहित्य का

परिचय प्राप्त करने के बाद इस अध्याय में मैत्रेयी पुष्पा और रीता चौधुरी के उपन्यासों का प्रतिपाद्य और उनकी प्रासंगिकता पर विचार किया जाएगा । प्रस्तुत शोध के लिए जिन उपन्यासों का चुनाव किया गया हैं, वे स्त्री-विमर्श के अंतर्गत आते हैं । इनमें क्या संदेश निहित हैं? इनकी प्रासंगिकता वर्तमान समाज में कहा तक हैं? –प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं सब विषयों पर विस्तृत रूप में विचार किया जाएगा । गौरतलब यह है कि चाहे जितनी भी अच्छी कहानी या पटभूमि क्यों न हो, यदि उपन्यास की कथा और भावना यथार्थ से कटी हुई हो; तो वह उपन्यास सफल होते हुए भी अधूरा रह जाता हैं । दोनों कथाकारों के उपन्यासों को मुख्यतः सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता हैं । इन उपन्यासों में समाज संबन्धित तथा सामाजिक दुराचारों के विरुद्ध संघर्ष की गाथा वर्णित है । नारी पर हो रहें उन तमाम अत्याचार एवं शोषण के इतिहास को यहाँ स्पष्ट किया है । यहाँ उनके दुख तथा आँसूओं के साथ साथ उनके अदम्य साहस का भी वर्णन किया गया हैं । इनकी नायिकाएँ आघात के बाद बैठकर रोने के स्थान पर प्रत्याघात करती हैं । अपने हिस्से का न्याय हासिल कर वे दूसरों को भी लड़ने के लिए होसला प्रदान करती हैं । उनकी नायिकाएँ अन्याय के आगे बिना झुके तमाम मुसकिलों का सामना करती हैं ।

3.1. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास: प्रतिपाद्य एवं प्रासंगिकता:

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्यिक क्षेत्र की तरफ़ देखे तो उन्होंने कई उपन्यासों का सृजन किया हैं । किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ *इदन्नमम, चाक, विजन* और *अल्मा कबूतरी* इन चारों का चयन किया गया हैं । जहाँ कथाकार ने अपनी प्रतिभा का उजागर करते हुए स्त्री के अनेक दुखों के निवारण का उपाय खोजने का प्रयास किया हैं । प्रस्तुत अध्याय में इन उपन्यासों के पतिपाद्य तथा प्रासंगिकता पर आलोचना की जाएगी ।

इदन्नमम:

इदन्नमम एक ऐसी साहसी लड़की की कथा है , बचपन में ही जिससे माँ-बाप का प्यार छीन चुका था । कथा की नायिका 'मंदा' अपनी दादी के साथ रहती हैं । मंदा के पिताजी जमींदार होने के साथ साथ एक अच्छे इंसान भी थे । वे अपने गाँव सोनपुरा में एक अस्पताल खोलना चाहते थे । अस्पताल का काम लगभग पूरा हो चुका था और अब बच डांक्टर की आने की बारी थी । अस्पताल के उद्घाटन के दिन ही उद्घाटन के ठीक कुछ समय पूर्व गाँव के कुछ गलत और षड़यंत्रकारी लोगों ने मिलकर उनकी हत्या कर दी । अपने स्वप्न को अधूरा ही छोड़कर उन्हें इस संसार से जाना पड़ा । पति के मृत्यु के बाद मंदा की माँ 'प्रेम' दूसरे पुरुष के साथ भाग जाती है । बऊ अर्थात मंदा की दादी अपनी बहू से नफ़रत करती हैं। यह नफ़रत शायद उनके मन की ईर्षा का प्रतिरूप है । पूरी जिंदेगी विधवा-वेदना को झेलनेवाली सास को अपनी बहू का दुबारा जीना शायद पसंद न हुआ होगा; शायद बऊ यह चाहती थी कि उनकी बहू भी उसी दर्द से गुजरे जिससे वे वर्षों से गुजरती आई हैं !! जब स्थिति इसके विपरीत निकलती है, तो उनके मन में अपने बहू के लिए नफ़रत का भाव जागना स्वाभाविक था । इन सबके बीच यदि कोई पीस रही थी तो वह मंदा थी । माँ और दादी दोनों से उसका लगाव था । माँ से वह इसलिए नाराज़ थी क्योंकि जीवन के विविध स्तरों में जब उसे एक माँ की जरूरत थी; तब वह बिल्कुल अकेली पड़ गई थी, उसे सहारा देनेवाला कोई न था, आख़िर माँ तो माँ होती है न !! उसकी कमी संसार का कोई भी सदस्य पूरा नहीं कर सकता हैं । बचपन में ही मंदा को शारीरिक शोषण का दर्द झेलना पड़ा था; उसके अपने ही मामा ने उसके साथ घिनोनी हरकत की थी । अगर उस समय मंदा की माँ 'प्रेमा' उसके साथ होती तो शायद वह हाद्सा न हुआ होता !! माँ के आँचल में पलकर ही तो बच्चे बड़े होते हैं, वह उन्हें हर मुसीबतों से बचाती हैं; मंदा को हरपल अपनी माँ की कमी महसूस होती थी । पिता के मृत्यु के बाद दादी 'द्वारिका' और मंदा को अपना गाँव छोड़ना पड़ा । उनके जमीन पर अब रिश्तेदार अपना हक़ जमाने लगे थे । अपनी जमीन को छुड़वाने तथा मंदा को सुरक्षित रखने के लिए बऊ ने गाँव छोड़ दी और अपने रिश्तेदार पंचमसिंह के यहाँ श्यामली गाँव में आ गई । क्योंकि प्रेमा ने मंदा को पाने के लिए अदालत में अर्जी भरी थी, सो

बऊ मंदा को श्यामली गाँव लेकर चली आयी । सौदा यह तय हुआ कि जब तक वे यहाँ रहेंगे तब तक श्यामली वाले उनकी फ़सल के हक़दार रहेंगे । परंतु हाय रे भाग्य! वहाँ भी मंदा की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया गया ; वह जिस लड़के से प्रेम करती थी, उसे भी घरवालों ने जोड़-जबरदस्ती मंदा से अलग होने पर मज़बूर कर दिया । लड़के का नाम मकरंद था । वह पढ़ने में तेज़ था ; घरवालों ने सोचा कि अगर वह मंदा की संगत में रहेगा तो उसका भविष्य बिगड़ जाएगा, वह अपने ही भाइयों के ईर्षा का विषय बन जाएगा; क्योंकि मंदा से जो भी विवाह करेगा, उसकी संपत्ति का वारिस बनेगा । मकरंद की माँ इन सब झमेलों न फसना चाहती थी, इसलिए उसे डॉक्टरी पढ़ने के लिए शहर ले गयी । बात लेकिन यहाँ तक आगे बढ़ चुकी थी कि उन दोनों का रिस्ता भी तय हो चुका था और सगाई की रस्म भी पूरी हो चुकी थी ; परंतु इनता कुछ होने बाद भी जब 'मकरंद' के घरवालों ने रिस्ता तोड़ दिया तो मंदा के जीवन में मानो भूचाल आ गया, उसकी दादी भी बदहवास हो गई । उनकी पैरों तले जमीन खिचक गई , इस घटना ने मंदा के जीवन को जैसे बदलकर ही रख दिया । पहले अपने माता-पिता के प्यार को खोना, फिर अपने प्यार को खोना...अपने जीवन में आए हर खुशी को इसकदर खो देना निश्चित रूप से किसी भी मनुष्य के लिए शाप से कम न होगा !! बचपन से लेकर जवानी तक मंदा को अपने हिस्से की खुशी के घर में दुखों का पहाड़ ही मिला । इस घटना ने उसे और अधिक पौढ़ बना दिया । अपने पिता के अधूरे स्वप्न को साकार करना ही अब मंदा के जीवन का मानो एकमात्र उद्देश्य बन चुका था । मकरंद के जाने से पहले जब एकांत में उससे बात की थी, तब मंदा को अपने गाँव में रुकने के लिए कहता था । उसका उत्तर देती हुई मंदा कहती है,

" इच्छा है, लेकिन सोनपुरा में बहुत कुछ अधूरा पड़ा है । घर-बाखरी वीरान और अस्पताल...कोशिश करके देखेंगे, शायद कुछ हो सके । पिताजी ने उसी की खातिर प्राण दे दिए ।" [2]

अपने प्यार को इतने करीब से पाकर इसकदर खो देने के पश्च्यात मंदा की जिंदेगी का रुख़ मानो बदल सा गया । प्यार तो वह ताउम्र मकरंद से ही करती रही, परंतु उसे हासिल करने की जिद नहीं की और न ही उसे अपनी कमजोरी बनने दी । समाज के स्वार्थ को उसने व्यक्तिगत-स्वार्थ से ऊपर समझा और अपने गाँव सोनपुरा में अस्पताल खोलकर पिता के अधूरे स्वप्न को पुरा किया । उसे यह पता था कि 'व्यक्ति' का लाभ समाज की उन्नति की अपेक्षा छोटी है और शायद उसे साथ ही यह डर भी था कि अगर वह मकरंद को पाने की कोशिश में लगी रहेगी तो वह और भी उससे दूर होता जाएगा । इससे तो वह यादें ही भली; जिससे वह मकरंद के होने का एहसास कर सके । उसके लिए मकरंद सदैव प्रेरणा का स्रोत रहा, जिसे उसने अंतिम समय तक संझोकर रखा और अपने मनोबल को टूटने न दिया । मन की इच्छा ही प्रकृतार्थ मनुष्य की शक्ति होती हैं । जब तक मंदा अपने अंतर्द्वंद से ऊपर नहीं उठ पायी थी, तब तक वह अपने भावनाओं में ही उलझी हुई थी । परंतु जिस क्षण उसने यह तय किया कि वह अपने पिता के अधूरे स्वप्न को साकार बनायेगी, तभी उसे यह भी ज्ञात हुआ कि इसके लिए उसे तमाम सामाजिक मिथ्या बंधनों से मुक्त होना पड़ेगा और लोगों की बातों को अनसुना कर अपने लक्ष ले प्रति अग्रसर होना होगा । मंदा ने सोनपुरा गाँव के नक्से को ही बदलकर रख दिया । इतना ही नहीं अपने गाँव के औरतों पर हो रहें अत्याचारों को रोकने की कोशिश में उसने अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की । अस्पताल के लिए दिन रात दौड़-धूप करती हुई मंदा को अपने बारें में बिल्कुल भी चिंता न थी । मंदा ज्यादा पढ़ी-लिखी न थी; फिर भी अस्पताल खुलवाने के उसने हर मुमकिन कोशिश की,

" अबकी बार हम किसी आंफिस में नहीं, सीधे राजा साब के पास भेजेंगें अपना प्रार्थना-पत्र । प्रधान काका और कायलेवाले महाराज इसे ले जायेंगे स्वयं अपने हाथों । राजा साब यहाँ के एम. एल. ए. हैं । मंत्री हैं । प्रतिनिधि हैं । जिम्मेदार हैं। यह कहो कि माई-बाप हैं इस क्षेत्र के। कुछ न कुछ सोचेंगे अवश्य! " [3]

मंदा को अपनी चिंता बिलकुल नहीं थी, उसे चिंता थी तो केवल गाँव के लोगों की, उनकी मदद करने के लिए वह हरदम आगे रहती थी । मंदा अपने निजी जीवन के अपेक्षा समाज के जरूरतों के प्रति सजग रहती थी । और वाकई में मंदा के कोशिशों की बदौलत थोड़े दिनों के लिए ही सही डॉ. इंद्रनील गाँव के अस्पताल में आ जाते हैं , जिससे गाँव के लोगों को काफ़ी राहत मिली थी । गाँव की उन्नति के लिए उसने अपना जीवन समर्पित का दिया था । हमेशा सच्चाई और ईमानदारी की राह पर चलनेवाली मंदा आगे चलकर एक असाधारण व्यक्तित्व की अधिकारिणी बन जाती है । जीवन के सुनहरे पलों को उसने समाज को अर्पित कर दिया और अपने प्रेम को प्रेरणा के रूप में लेकर जन-जन की सेवा में लीन हो गई ।

प्रासंगिकता:

इदन्नमम का अर्थ है-"जो मेरा नहीं हैं"; प्रस्तुत उपन्यास में व्यक्तिगत स्वार्थ से सामाजिक स्वार्थ को ऊपर माना है । इस संदेश को जन-जन तक पहुँचाना उपन्यासकार का अन्यतम उद्देश्य रहा है । मैत्रेयी पुष्पा ने यहाँ स्त्री के आत्मप्रत्यय को प्रस्तुत करने का सुंदर प्रयास किया है । प्रस्तुत उपन्यास की घटना और समस्या दोनों ही अत्यंत प्रासंगिक हैं । क्योंकि आज भारत का प्रायः सभी गाँव इस समस्या जुझ रही हैं । रही बात नारी की समस्या की; वह तो अनंत काल से चली आ रही हैं...जिसे मैत्रेयी पुष्पा ने अपरम्परागत रूप से यहाँ प्रस्तुत किया है । उनकी नायिकायेँ न केवल अपने आप को संभालती है, बल्कि एक सम्पूर्ण गाँव को बदलने का संकल्प लेती है और उसे पूरा भी कर दिखाती है । गाँव के लोगों की भलाई के लिए परिणाम की परवाह किए बिना वह अपने राह का चुनाव कर लेती है...मंदा में निहित आत्मविश्वास आज प्रत्येक स्त्री के लिए जरूरी हैं । जिसके सहारे वह आगे बढ़ सकती है और अन्याय का सामना कर सकती हैं ।

चाक :

चाक उपन्यास की मुख्य नायिका सारंग एक शिक्षित स्त्री हैं । जिसकी शादी एक बहुत ही पिछड़े गाँव में हो जाती हैं । जिसे शिक्षा का मोल पता है और इसीलिए वह अपना पूरा जीवन निरक्षर लोगों के प्रति समर्पित कर देती हैं। उस गाँव में एक अच्छा विद्यालय खोलने और वहाँ एक अच्छे शिक्षक को लाने के लिए सारंग अपनों से भी लड़ जाती हैं । सारंग अत्यंत साहसी व्यक्तित्व की अधिकारिणी है । बचपन में सारंग अपने माँ को खो देती हैं और उसकी सौतेली माँ को वह बिल्कुल भी नहीं भाती थी । सारंग के पिता ने उसे संस्कृत छात्रावास में भर्ती करा दिया। शुरू शुरू में सब ठीक था । पर वहाँ लड़कियों अत्याचार होते थे ; शारीरिक नहीं मानसिक तोर पर वे कमजोर पड़ने लगती हैं। कही पर निकलना मना है , तो किसी से वे बात भी नहीं कर सकती थी ; हर पल जैसे एक अजीब सी पाबंदी लगी रहती थी । जब उसे अपने बंदी होने का एहसास होने लगा तब सारंग ने अपने पिताजी से अनुरोध करती है कि उसे वहाँ से ले जाए परंतु पिता अपनी दूसरी पत्नी के कहने से उसे घर वापस नहीं लाते है । धीरे धीरे वहाँ सारंग का दम घुटने लगा, बचपन से स्वतंत्र रहनेवाली पक्षी को जैसे किसीने पिंजरे में कैद कर दिया हो । अंत में सारंग वहाँ से निकाली जाती हैं क्योंकि वहाँ लड़कियों पर होने वाले हर अत्याचार के विरुद्ध सारंग आवाज़ उठाती थी, स्वतंत्रता का अर्थ समझाती थी । पढ़ाई आधी कर जब वह अपने पिता के साथ गाँव लौटती है, तब गाँववालों के लिए वह चर्चा की वस्तु बन चुकी थी । इसीलिए उसके पढ़ाई को आधे में छोड़कर ही पिता ने उसकी शादी 'रंजीत' से करवा दी । सारंग की पढ़ाई अधूरी रह गई , जिसका गम उसे उम्रभर झेलना पड़ा । अपने असाधारण चरित्र के चलते वह न तो किसी के आगे झुकती थी और न ही कभी सच बोलने से इतराती थी । शादी के बाद भी उसके इस स्वभाव का कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पढ़ी-लिखी, स्वतंत्र सारंग नए घर में बंधी-बंधी सी महसूस करने लगी । पढ़ाई-लिखाई का अर्थ केवल चूल्हा-चौकी में ही सीमित होकर रह गया । न तो वह घर के बाहर के कामों में हिस्सा ले सकती थी और न ही अपने मन मुताबिक पढ़ाई-लिखाई में मन लगा सकती थी । पति और बेटे को लेकर ही वह दिनभर व्यस्त रहती ; ससुर का खयाल रखती । बस इतनी सी थी उसकी जिंदेगी ; पर जब उसके पति रंजीत ने अपने बेटे चंदन

को शहर भिजवाने की बात की, तब मानो सारंग का जीवन ही बदल गया । हुआ यू कि सारंग की बुआ की बेटी 'रेशम' की हत्या हो जाती हैं, जो कि गर्भवती थी । पति के मृत्यु के बाद उसके बड़े भाई ने ही उसे अपनाने का ढोंग किया और जब वह माँ बननेवाली होती है, तब वह अपना पल्ला झार लेता है । रेशम साहसी थी, सारंग जैसी...उसने बच्चे को जन्म देने की थान ली, ससुराल में यह बात पता चली तो हल्ला मच गया । सभी ने मिलकर डराया-धमकाया, परंतु उसने किसी की नहीं सुनी और शायद उसकी यहीं हिम्मत की कीमत उसे अपने मौत से चुकानी पड़ी । उसके ससुराल वालों ने छल से उसे घर समेत जलाकर मार दिया और इस घटना को दुर्घटना का नाम देकर आँसू बहाने लगे । सारंग ने इसका ऐसा विरोध किया कि उसके घरवाले डर गए । परंतु सहयोगी के अभाव से वह उसे सही-न्याय नहीं दिला सकी । इस षड़यंत्र ने सारंग को झकझोर दिया; वह समझ गई थी कि अतरपुर जैसे छोटे से गाँव में स्त्री की क्या औकात है !! सब कुछ देखते हुए भी उसे इंसानों की हैवानियत पर यकीन नहीं हो रहा था; अपने आप से वह कहती हैं, "...मेरी बहन कबूतर और हिरन की तरह ही भरमाकर मौत की घाट उतार दी..."[4] इस घटना का सारंग पर इस कदर असर हुआ कि मानो अब वह हर अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाने लगी थी । इधर इन सब को देख परंपरागत ख़यालों के धनी रंजीत को ऐसा लगा कि अगर उसका बेटा यहाँ रहेगा तो उसकी अच्छी परवरिश नहीं हो पाएँगी इसीलिए उसे शहर भेज दिया । एकमात्र पुत्र के बिछोह में सारंग का मनोबल टूट जाता हैं । वह लगभग पागल हो गई,,खाना-पीना, कपड़े-लत्ते तक की सुध न रही । उसी समय 'श्री-धर' मास्टर गाँव में आता है । वह आम आदमियों जैसा न था और न ही घूसखोर था, वह सच्चा और ईमानदार व्यक्ति था । गाँव के बच्चों के भविष्य के लिए दिन-रात मेहनत करता । सारंग मन उसकी और झुकने लगा। उसका अधूरा सपना मानो पूरा हो गया। शिक्षा की राह पर चलकर ही तो मनुष्य 'मनुष्यत्व' को प्राप्त कर सकता है । इस सत्य का आभास 'सारंग और श्री धर' दोनों को था । दोनों ने मिलकर 'अंतरपुर' गाँव के बच्चों के भविष्य को सँवारने का प्रयास किया, भरपूर संघर्ष किया और काफ़ी हद तक वे सफल भी हुए। इसी प्रयास के चलते श्री-धर की प्रेरणा से सारंग ने अपने बेटे चंदन को

भी वापस ला पाई । उसके कहने पर ही तो सारंग अपने बेटे के लिए एक पत्र लिखती है, जहाँ केवल एक माँ का प्यार के सिवा और कुछ न था...तब और क्या होना था, बेटा माँ के पास चला आता हैं । इधर सारंग का पति रंजीत श्री-धर से सारंग की नजदीकी बर्दाश नहीं कर पाता हैं । पढ़ा-लिखा होकर भी वह अपने लिए एक नौकरी नहीं ढूंढ पता है, अपने पंचायत के मुखियाँ लोगों के साथ घूमता था और नेता बनने का लालस उसके मन में घर कर गया था । इसी वजह से वह दिन रात नेताओं के पीछे चक्कर लगाता फिरता रहता...अपनी सोच-बुद्धि सब कुछ खोकर वह बच दूसरों के इशारों पर नाचने लगा था । सही-गलत का अंतर अब वह भूल चुका था । सारंग पर गुस्सा करना, उस पर हाथ उठाना अब उसके लिए आम बात बन चुकी थी । गाँव के लोग भी सारंग और श्री-धर की मित्रता पर लांछन लगाते है । परंतु किसी ने यह समझने का प्रयास नहीं किया कि किस वजह से सारंग श्री-धर की पूजा करती, उसे इतना मानती थी ! उनके महत स्वार्थ की तुलना में गाँववालों सस्ती समालोचनायें ज्यादा असर दिखाने लगी । जिसके फलस्वरूप सारंग पर संदेह करना अब रंजीत की आदत बन चुकी थी । रंजीत ने सारंग पर अपना अधिकार दिखाते हुए श्री-धर पर जानलेवा हमला भी करवाया । ये तो श्री-धर का भाग्य अच्छा था उसके प्राण बच गए । प्रधानी पद को हासिल करने के लिए रंजीत ने हर सफल प्रयास किया । अर्थात चापलूसी करना, डराना, धमकाना हर तरह से वह अपने आप को उस्ताद बनाने में लग गया । परंतु अंत में उसे उम्मीदवार ही नहीं बनाया गया। इधर श्री-धर की सहायता से सारंग का खोया हुआ आत्म विश्वास लौटने लगा था। रंजीत जिस प्रधानी-पद के लिए अपने आप को लेकर सपने देख रहा था; उसी प्रधानी पद पर 'सारंग' अपना पर्चा भर देती है । रंजीत के बार बार कहने के बाद भी सारंग अपने निर्णय से पीछे नहीं हटती हैं । उसे पता था कि गाँव की औरतों के लिए अगर कुछ अच्छा करना है तो किसी न किसी को तो यह हिम्मत दिखानी ही पड़ेगी । उपन्यासकार ने यह नहीं जताया कि गाँववाले सुधर गए है अथवा सभी ने सारंग के निर्णय का समर्थन किया ; हाँ एक बात सभी ने स्वीकार कर ली कि 'सारंग' ही एक ऐसी पहली स्त्री निकली , जिसने पूरे अतरपुर गाँव के समाज व्यवस्था को बदलने की हिम्मत दिखायी ।

लोग बातें करने लग गए थे । लेकिन सारंग ने किसी की परवाह नहीं की । उपन्यासकार यहाँ एक ऐसी नारी पात्र को दिखाया है जो शिक्षा के मोल को समझती है और सच्चाई का साथ निभाकर अन्याय के विरुद्ध लड़ने की हिम्मत रखती हैं । सम्पूर्ण उपन्यास में प्रकारांतर स्त्री-अस्मिता की लड़ाई को दिखाने का प्रयास किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि घर-बार, पति-बच्चे आदि के होने के बावजूद नारी का अपना एक परिचय होना कितना आवश्यक है !! अनेक वाद-विवाद-प्रतिवादों को पीछे छोड़ जब सारंग प्रधानी पद की उम्मीद्वार के रूप में चुनी जाती है तो गाँव की औरतों ने इस साहसी कदम में उसका साथ दिया । इस सहयोग ने सारंग के हिम्मत को दुगना बना दिया । भारत के एक पिछड़े हुए तथा पितृसत्तात्मक भावना से संपृक्त गाँव में इस तरह के कदम को किसी चुनौती से कम नहीं माना जा सकता । पंचायत-राजनीति में इस कदर स्त्री को शामिल कराने का प्रयास बहुत कम कथाकारों ने किया होगा ! मैत्रेयी पुष्पा ने इस चुनौती को भली-भाँति पाठकों के सामने रखा हैं और निष्कर्ष भी उन्हीं के हाथों में सौंप दिया हैं; क्योंकि पाठकों से बड़ा न्यायधीश दूसरा कोई नहीं हो सकता है ।

प्रासंगिकता:

देहात की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को लेकर चाक उपन्यास लिखा गया है । भारत जैसे परंपरागत समाज में नारी को अपनी अस्मिता के लिए किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, उसे सुंदर ढंग से यहाँ प्रस्तुत किया गया है । मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसीसे लड़ना कितना कठिन होता है; यह तो सर्वविदित है । सारंग ने इस कठिन काम को संभवपर बनाया था । इस उपन्यास के जरिये नारी के एक नए पहलू को दिखाने का प्रयास किया गया है । उसके विश्वास और लगन को स्थापित किया गया है । समाज के उन्नति में शिक्षा का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण होता है-उस बात पर भी यहाँ ध्यान दिया गया है और साथ ही स्त्री-

शिक्षा के आवश्यकता के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया है । यें सभी संदेश वर्तमान समाज के लिए निःसंदेह महत्त्वपूर्ण हैं ।

विजन:

विजन शहरी पटभूमि पर लिखा गया उपन्यास है । गाँव एवं लोक-जीवन से संपृक्त मैत्रेयी पुष्पा ने शायद पहली बार शहरी पटभूमि पर, शहरी जीवन पर उपन्यास लिखा। जहाँ उन्होंने बड़े ही बेबाक ढंग से चिकित्सा जगत के विविध घटनाओं को उजागर किया हैं । चिकित्सा क्षेत्र के एक विशेष क्षेत्र को उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास का आधार बनाया हैं । नेत्र-चिकित्सा पर आधारित यह उपन्यास उनके शहर में बिताए हुए अनुभवों से सिक्त है । हर बार की तरह इस बार भी विषय पर गहरे अध्ययन ने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया । नेत्र-चिकित्सा से संबंधित हर छोटी-छोटी बातों का इतने सुंदर ढंग से वर्णन हुआ है कि मानो वे स्वयं एक डॉक्टर हो । कथा स्त्री पर आधारित है । सम्पूर्ण कथा डॉ नेहा और डॉ आभा पर आधारित है ।

कथा कुछ इस प्रकार आगे बढ़ती है, एक प्रसिद्ध आई-सेंटर में आँख के ऑपरेशन के दौरान एक मरीज़ की मृत्यु हो जाती है । आगरा के जाने माने नेत्र-विशेषज्ञ डॉ आर. पी. शरण के 'शरण आई सेंटर' में यह दुर्घटना संघटित होती है । जहाँ डॉ शरण के पुत्र और पुत्रवधू क्रमशः डॉ अजय और डॉ नेहा भी काम करते हैं । डॉ अजय की लापरवाही और डॉ शरण की गैरज़िम्मेदारी के चलते यह हाद्सा हुआ । डॉ नेहा एक बेहतरीन डॉक्टर हैं, परंतु उसे किसी भी ऑपरेशन में शामिल नहीं किया जाता है । इस बार भी ऐसा ही हुआ था, लेकिन जब मामला गंभीर निकला तो डॉ नेहा को ओ. टी. में बुलाया गया । पर इससे पहले की वह कुछ करती मरीज़ की मृत्यु हो चुकी थी । डॉ नेहा इस घटना को सहज रूप में स्वीकार ही नहीं कर पायी । नेत्र विभाग की होनहार छात्रा तथा क़ाबिल डॉ नेहा इस घटना के पीछे छिपे हत्या को साफ़ देख पा रही थी । सबसे बड़ा सदमा उसे तब लगा जब उसे यह पता चलता है कि यह हाद्सा उसके पति के हाथों

हुआ है । नेहा की पढ़ाई से लेकर मरीज़ की मृत्यु तक की कथा फ्लैश बेक में दिखाई गई है और फिर अंत में यह दिखाया गया है कि नेहा का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता हैं । कथा कुछ ऐसे आगे बढ़ती है कि दिल्ली की एक साधारण घर की लड़की नेहा डॉक्टरी पढ़ती है । पिता के सीमित आय से नेहा ने अपना अध्ययन पूरा किया । उसकी एकाग्रता एवं बुद्धि को सारा मेडिकेल कॉलेज सराहता है । अच्छे हीरे की तलाश जिस प्रकार एक अच्छा जोहरी ही कर पाता है; ठीक उसी प्रकार डॉ नेहा की बुद्धि को परखने का काम यहाँ डॉ आर॰ पी॰ शरण ने किया । आई-स्पेशलिस्ट के फील्ड में अपना इक्का जमानेवाले शरण साहब ने पैसे के बलबूते पर अपने बेटे अजय को एम. बी. बी.एस तथा एम. डी की डिग्री दिलवायी थी । अब वे एक ऐसी लड़की की तलाश में थे, जो उनके बाद शरण आई सेंटर को संभाल सके । अपने बेटे के सो कल्ड हुनर को बाप अच्छे से जानता था, इसीलिए बिना वक्त गँवाए डॉ शरण ने नेहा के परिवार से शादी की बात चलायी । इस आकस्मिक रिस्ते से नेहा के माता-पिता आश्चर्यचकित रह गए, इतने बड़े आदमी के घर से नेहा के लिए रिस्ता आया हैं ; नेहा के पिता को और क्या चाहिए था । अपनी बेटी को एक अच्छा पति-अच्छा घर मिले - यही तो हर बाप का सपना होता है !! बिना दहेज के लड़की का हाथ मांगनेवाले लोग भला होते ही कितने हैं ! नेहा के पिता के लिए इससे अच्छा और किफ़ायती रिस्ता और दूसरा कोई हो ही नहीं सकता था । उन्होंने झट से हाँ कह दिया । अब नेहा की बारी थी; इंटर्नशिप कर रही नेहा एम.डी. की पढ़ाई करना चाहती थी और जब उसे अजय के ख़रीदे हुए डिग्री के बारें में पता चला, तो उसने शादी करने से मना कर दिया । नेहा आगे की पढ़ाई करना चाहती थी । परंतु उसके माँ-पिता ने उसे अजय के साथ शादी करने पर मज़बूर कर दिया । बचपन से अब तक जिस माँ-बाप ने नेहा की हर तमन्ना को पूरी करने की कोशिश की थी; उन्हीं के लिए नेहा ने यह त्याग किया और शादी के लिए हाँ कह दी । और फिर क्या होना था...जो होना था वह तो पहले से ही तय था । दुनियादारी को भली-भाँति जानने वाले नेहा के ससुर आर. पी. शरण ने उसे अपने मायावी दुनिया के माया में फँसा लिया । सास-ससुर-पति के प्यार से भरा एक सुंदर घर । उसके बाद एक देवशिशु आगमन ने तो नेहा को उस घर की माया

में और अधिक बांध दिया । बाहर से नेहा एक सोभाग्यवती पत्नी और बहु थी, पर अंदर का सच तो कुछ और ही था । जिसे जानने में नेहा को भी काफ़ी वक्त लगा । एक अत्यंत साधारण लड़की जब अचानक ने करोड़पति खानदान की बहु बनती है; तब वास्तव से उसका नाता कुछ समय के टूट जाना असंभव नहीं माना जा सकता है । इन सबसे बाहर आकार वास्तविकता को देखने व समझने में नेहा को काफ़ी समय लगा । इन सब के चक्कर में उसकी एम.डी. की पढ़ाई छूट गई, उसके सेमिनार-प्रेजेंटेशन आदि भी छूट रहे थे । पति-परिवार-बच्चे के चलते मानो डॉ नेहा कही गायब ही हो गयी थी, रह गयी थी केवल नेहा...जो उसने होश संभाला तो देर हो चुकी थी, लेकिन उसे हिम्मत न हारते हुए प्रयास किया । शायद वह सफल भी हो जाती अगर वह हादसा न हुआ होता । बाप-बेटे की लापरवाही को देख देखकर नेहा को अत्यंत दुख होता था । प्राइभेट नर्सिंग होम के नाम पर लोगों को लुटना, मरीज़ को बेवजह ज्यादा दिन अस्पताल में रुकाना, नई तकनीकों के होते हुए भी पुरानी तकनीकों को अपनाकर समय बरवाद करना...आदि सब उनकी खोखली मानव सेवा का सच था । दोनों बाप-बेटे लोगों को लूटकर कर उनकी सेवा की वाह-वाही लेते थे । नेहा ख़ून के आसू पीकर रह जाती थी क्योंकि उसकी बात कोई नहीं सुनता था । घर वापस जाने की बात करते माँ-बाप रोने लगते थे। हाल ऐसा था कि उसका होना न होना एक जैसा था । अपनी विद्या का सदुपयोग न कर पाने की दर्द ने उसे अंदर से झकझोर कर रख दिया था । वह अपने आप को अपराधी मानने लगी थी । अजय अपनी हुनर के चलते ही तो एक मरीज़ की हत्या कर डालते है । ऑपरेशन के प्रारंभिक स्तर पर मरीज़ की आँखों को सुन्न करने के लिए *ब्लॉक* दिया जाता है और महान डॉ अजय को इतना भी नहीं आता था, जायोलोकिन रिएक्शन के वजह से उस मरीज़ की मृत्यु हो जाती हैं । और उसके बाद उस मृत्यु की घोषणा करना का दायित्त्व नेहा को सौंपा जाता है । कथा के अंत में डॉ नेहा अपना संतुलन खो बैठती हैं ।

“डॉ. नेहा शरण स्वस्थ और हँसमुख व्यक्तित्व की स्वामिनी...स्टूल पर बैठी कब से बुदबुदा रही हैं-जिंहोने मुझे यह कला सिखाई है, मैं उन्हें अपने माता-पिता के समान समझुंगी । उनके साथ

रहूँगी । आवश्यकता हुई तो अपनी चीजें उनके साथ बाँटूँगी । यह कला रोगियों के भले के लिए...यह कला रोगियों के भले के लिए...यह कला रो..."[5]

मैत्रेयी पुष्पा ने यहाँ दो अलग प्रकार के चरित्र को दिखाया हैं । एक और जहाँ डॉ नेहा एक सफल डॉक्टर होते हुए भी अपनी ज़िम्मेदारी नहीं निभा पाती हैं ; वह अपने अस्तित्व भूलकर केवल घरवालों के हिसाब से चलती रही और इन सबके चलते मरीज़ के प्रति रहे कर्तव्य को डॉ नेहा नहीं निभा सकी । अपने विद्या का सदुपयोग न कर पाने का दुख तथा अपने अंदर के 'नेहा' को दबाए रखने के गम ने डॉ नेहा को मानसिक रूप से दुर्बल बना दिया । डॉ आभा का किरदार इसके सम्पूर्ण विपरीत है । वह एक सफल डॉक्टर थी । उसकी शादी एक क़ाबिल डॉक्टर से होती है । लेकिन वह एक अच्छा इंसान न था । तो उस वजह से आभा से यह शादी नहीं निभ पाती है । क्योंकि आभा को अपना आत्मसम्मान बहुत प्रिय था और किसी भी क़ीमत पर उसे गँवाना नहीं चाहती थी । न ही वह अन्याय के आगे अपना सिर झुकाती थी । अपने शादी को बचाने का उसने भरपूर प्रयास किया था, परंतु उस रिस्ते में सम्मान, विश्वास जैसी प्राथमिक प्रयोजनों का ही अभाव रहा तब आभा उस खोखले रिस्ते को निभाने का बोझ नहीं उठा पायी । उसने अपने आप को उस खोखले और मिथ्या बंधन से मुक्त कर लिया । वैवाहिक जीवन के कसमकस में लोग कभी कभी अपने उत्तरदायित्व को निभाने में चूक जाते हैं । डॉ आभा को इस बात की जानकारी थी, इसीलिए उसने वक़्त रहते ही डॉ नेहा को इस संदर्भ में आगाह कर दिया था, परंतु डॉ नेहा ने बात की अहमियत को नजरंदाज़ कर दिया और डर मारे आभा से सारी बातें छिपाती रही । वक़्त रहती ही अगर उसने सारी बातें बता दिया होता तो शायद डॉ नेहा को अपना विश्वास और मानसिक संतुलन खोना नहीं पड़ता । इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने विजन उपन्यास में नारी के दो रूपों को प्रस्तुत किया है । एक जो डर डर कर जीती हैं और दूसरी, जो साहस व सम्मान के साथ समाज में अपने आप को प्रतिष्ठित करती हैं । दोनों ही पात्र वर्तमान समय व समाज को दर्शाता हैं ।

प्रासंगिकता:

यह उपन्यास वर्तमान समय के साथ चलने वाले समस्याओं का हिस्सा है, जहाँ समाज में हो रहे अन्याय व लुंठन के सत्य को दिखाया गया हैं । कथाकार ने चिकित्सा जगत के अंदरूनी बातों से समाज को परिचित कराया हैं । दो ऐसी विपरीत चरित्र के नायिका को लेकर कथाकार ने इस उपन्यास का निर्माण किया है ताकि पाठक सही और गलत राह को समझ सके । साथ ही लोगों की कुंठित व परंपरागत मानसिकता को दिखाया हैं; जो अपने शुभचिंतक से ज्यादा उनपर भरोसा करती हैं, जो उन्हें पैसा देते हैं । पैसों के लिए लोग अपना जमीर बेच डालते हैं, लेकिन इंसाफ के राह पर चलनेवालों का साथ नहीं देते । विद्या बाँटने के लिए अर्जित की जाती है, अपने साथ लेकर घर बैठने के लिए नहीं । मानव-सेवा ही एक सच्चे डॉ का प्रथम धर्म होता हैं । जब मनुष्य अपने अधिकार के लिए खुद आगे बढ़कर आवाज़ नहीं उठाएगा, उसे पूछनेवाला भी कोई न निकलेगा । नेहा के चरित्र के माध्यम से कथाकार ने इसी दिशा की ओर संकेत किया है ।

अल्मा कबूतरी:

प्रस्तुत उपन्यास कबूतरा जाति पर आधारित है । कथा की नायिका अल्मा नामक एक कबूतरी है । 'अल्मा' शब्द 'आत्मा' को समझाता है । बुंदेलखंड की जनजाति 'कबूतरा' पेशे से चोर मानी जाती थी । जिनके पूर्वज अपना संबंध छितौड़ के रानी पद्मिनी से मानते थे । उनका दावा था कि उन्होंने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के साथ स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा भी लिया था । उनके हिसाब से वें लोग बागी थे, जिन्हें अपनी भूमि से खदेड़ा गया था; जिसके फलस्वरूप उन्हें दूसरों के खेतों में पनाह लेनी पड़ी । जो पहले देश के लूट मचाते थे, बाद में उसी चीज को उनका पेशा समझा जाने लगा । अल्मा के पिता कबूतरा जाति का होते हुए भी पढ़ा-लिखा था । परंतु उसके जाति के चोर-प्रवृत्ति के कारण उसका कही भी मान न था । कहने को तो मास्टर था, पर मान उसका दो कौरी का भी न था । पुलिस वाले उसे सदा दुत्कारते थे, उसे

फिर से डाकू चोरी करने के लिए उकसाते थे । अंत में रामसिंह को अपने बेटी अल्मा के खातिर पुलिस का दलाल बनना पड़ा । अल्मा के माँ की मृत्यु के बाद पिता रामसिंह ने उसे माता-पिता दोनों का प्यार दिया । रामसिंह ने अपने बेटी को पढ़ाया था, ताकि वह आगे जाकर कज्जा (सभ्य) समाज में अपनी जगह बना सके । परंतु समय ने उसकी इच्छा को नहीं स्वीकारा । इससे पहले की अल्मा का जीवन सुरक्षित होता; रामसिंह को डाकू सजाकर मारा जाता है । चंबल के बड़े डाकू बेतासिंह पर आकर्षणीय इनाम था । रामसिंह की हत्या करके पुलिस और डाकू ने मिलकर उस इनाम को बाँटा लिया । " पुलिस भी बप्पा को मानने लगी, उनका काम आसान कर देनेवाले बप्पा । जिंदा रहने के लिए कहीं से भी गुजर रहे थे । ठुको पर्दे में रखा, क्योंकि भीतर ही भीतर जानते थे, जो कर रहे हैं, वह कहीं गलत है । पर राम-नाम-सी जिंदेगी, सुमिरना जरूरी हो गया । नहीं तो भाव की भँवर ही भँवर ।

"सबकुछ हासिल है ।"

"नहीं हासिल हुआ तो बेटासिंह की सूरत से मिलता-जूलता कबूतरा । कि हासिल ही नहीं करना चाहा?"

"दारोगा इनाम-इनाम बर्रा रहा है । बेतासिंह जल्दी मचा रहा था । बप्पा घबरा-घबराकर बेहाल ।" [6]

अल्मा के पिता का जहाँ यह हाल था; प्रेमी का और भी बत्तर हाल था । 'राणा', अल्मा का प्रेमी । राणा का जन्म कबूतरा बस्ती में होता है । उसके माँ का नाम 'कदमबाई' और बाप 'जंगलिया' था । परंतु उसका असली बाप एक सभ्य किसान मंसाराम था । जंगलिया कबूतरे से मंसाराम की अच्छी दोस्ती थी ; पर वह दोस्ती कहने भर की थी । मंसाराम उससे गलत काम करवाता और मुनाफा लुटता, साथ ही दो पेसे उसे भी दे देता । उससे चोरी भी करवाई और बाद में सारा दोष उसके माथे लदकर ख़ुद बेफ़िक्र धूल उड़ाते । असल बात तो यह थी कि मंसाराम को जंगलिया की पत्नी कदमबाई की चाह थी । चाह !!! मन की नहीं तन की चाह मंसाराम को

सताती । एहसान तले दबे पति-पत्नी पर दया बिखेरता किसान मंसाराम । परंतु इसके आड़ में छिपी 'मंसा' को सहज-सरल कबूतरे नहीं भाप पाये । एसे में एक वहीं हुआ ; जो मंसाराम की मंसा थी और होनी को जो मंजूर था । उसने धोखे से जंगलिया को पकड़वाकर मरवाया और ख़ुद उसके जगह पर आकर कदमबाई के साथ संभोग किया ।

" मंसाराम ने सोचा- मैंने बलात्कार कर लिया ! कदम ने मीठे चुंबन माथे पर जड़ दिया और पुरुष को मुक्त कर दिया । " [7]

उसी रात उसे जंगलिया की मौत का भी ऐलान किया जाता है । एक तरफ पति की मौत का गम और दूसरी ओर अपने गर्भ में रोपित नए जीवन का आनंद , लगभग उन्माद की अवस्था में चली गई कदमबाई । संतान के मोह ने पति-बिछोह पर विजय प्राप्त कर ली और एक नए जीवन ने इस धरती पर कदम रखा । 'वीर राणाप्रताप' के नाम से प्रभावित होकर कदम ने अपने बेटे का नाम रखा 'राणा' । राणा पर कज्जा और कबूतरा दोनों जातियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । इसी के चलते उसका मन चोरी-डकैती में न जाकर पढ़ाई-लिखाई में ज्यादा जाता रहा, मंसाराम का छोटा बेटे 'करन' से राणा की दोस्ती हो चली थी और इसका हरजाना उसे भुगतना पड़ा था । मंसाराम की पत्नी 'आनंदी' ने राणा को मारने के लिए एक खतरनाक कुत्ते को भेज दिया था । भगवान का शुक्र है कि समय रहते करन घटनास्थल पर पहुँच जाता है ।

" करन न आता तो न मालूम राणा का क्या होता ? सिखाया हुआ कुत्ता हो या आदमी , इंसान की जान लेकर ही दम लेता है । कुत्ता करन का था । समझाने से समझ गया । करन के रूप में ज्यों सोलहवर्षीय भगवान उतार हों । " [8]

इन सब घटनाओं के फलस्वरूप कदमबाई राणा को गोरामछिया भेज देती है । गोरामछिया अर्थात अध्यापक रामसिंह के शरण में राणा को भेजना उसने सही समझा । यहाँ आकर उसका परिचय अल्मा से होता है । रामसिंह दोनों को एकसाथ पढ़ाता, थोड़े ही दिनों में दोनों में दोस्ती

हो जाती है और फ़िर धीरे धीरे वह दोस्ती प्यार में तब्दील हो जाती है । दोनों घरों में राणा और अल्मा की शादी के सपनें देखे जा रहे थे । परंतु रामसिंह की सच्चाई जानने के बाद राणा अपने को ठगा हुआ सा महसूस करने लगा और इसी बात से खफ़ा होकर वह 'मड़ोरा खुर्द' अर्थात अपने गाँव में वापस लौट आता है । अल्मा को साथ चलने के लिए कहता है पर वह राजी नहीं होती तो वह अकेला ही चला आता है। पहले कज्जा लोगों से धोखा मिला, फिर अपने ही कोम के रामसिंह द्वारा फिर से धोखा खाना; इन सब ने राणा पर कोमल मनपर गहरा प्रभाव छोड़ा । इसके चलते वह यह नहीं सोच पा रहा था कि अल्मा भला कैसे अकेली आनेवाले मुसीबतों का सामना करेगी ! परिस्थिति से मुँह फेर लेने से वह सुधर तो नहीं जाती है न !! अतः वही हुआ जिसका अल्मा-रामसिंह-राणा तीनों को डर था । बेतासिंह की जगह रामसिंह मारा जाता है और अल्मा को उसका बेईमान दोस्त दुर्जनसिंह पैसे के लिए बेच देता है। अल्मा राणा को ख़त में अपनी पीड़ा सुनाती-

" दुर्जन कहता है- रामसिंह से जिंदेगी जोंक की तरह चिपट गई है, उसने बेटी को भी दाँव पर लगा दिया । हारे हुए जुआरी की तरह खेल रहा है, साला ढोंगी । नाटकबाज ।"

" –अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना । भला । इसमें बुराई भी नहीं । हम कबूतराओं में तो यह चलन रहा है-जेवर-गहना-बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं । अब तू मेरी खरीदी हुई..." [9]

दुर्जन कबूतरे ने अल्मा का सौदा झाँसी के राजनीति के बड़े नेता सूरजभान से किया । जो बड़े बड़े नेताओं को खुश करने के लड़कियों का इंतेजाम करता हैं और अपना काम निकलवाना चाहता है । पहले तो उसने ख़ुद अल्मा का बलात्कार किया और बाद में उसे दूसरे राक्षसों के लिए पाल-पोसकर घने जंगल में बंध कोठरी में रखा। बलात्कार के दौरान अल्मा के गर्भ में राणा का अंश था, जो महज चार महीने का था; नष्ट हो गया था । सुरजभान के कैद में अल्मा का परिचय मंसाराम के भानिज धीरज से हुई, यह भेद उपन्यास में काफी देर में खुलती है। राणा अल्मा के

लिए जो कुछ नहीं कर पाया, वह धीरज ने कर दिखाया। एक पढ़ा-लिखा होनहार युवक नौकरी की तलाश में सुरजभान के चंगुल में फँस जाता है। जिसका हरजाना भी उसे भुगतना पड़ा। अल्मा से धीरज की दोस्ती हो जाती है और धीरज के मन में न चाहते हुए भी अल्मा के लिए हमदर्दी-प्यार जैसी भावनाएं पलने लगती हैं । जिस दिन अल्मा को बड़े-बड़े नेताओं के दिल बहलाने के लिए भेजा जाना था, उसके पहले ही रात को धीरज उसे भगा देता है । परंतु नियति; उसका क्या करती बेचारी अल्मा ? भागती हुई अल्मा नत्थू (सुरजभान का ख़ास आदमी) के हाथ लग गई थी, अनेक मिन्नतों के बाद नत्थू ने उसे प्रदेश के समाज-कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री के आवास में पहुँचा दिया । जो निर्वाचन से पहले डाकू श्रीराम हुआ करता था । परंतु उसने अल्मा से कहा था कि वह उसे धीरज के परिचित वकील हरीसिंह के घर छोड़ आएंगें । अल्मा फिर से कैद हो गई । कहाँ वह खुले आसमानों मैं उड़ने के ख्याव पाल रही थी और कहाँ उसका सौदा नत्थू नए दलालों के साथ कर गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो जिंदेगी ने फिर से एक बार उसका मज़ाक उड़ाया हो !! यहाँ दलाली का धन्दा 'स्त्री' कर रही थी; अल्मा विवश हो गई,

" अल्मा न रो सकी न हँस सकी । अब तक वह मर्दों पर हमला करती रही है, जो उसकी इज्जत से खेलने के मक़सद से आए हैं । यहाँ यह औरत है, जो उसे नीलाम करने पर तुली है !" [10]

मंत्री श्रीराम शास्त्री अविवाहित थे । इसीलिए उसके टुकड़ों पर पालने वाली दलाल औरत चाहती थी कि उनकी शादी हो जाये तो उन्हें थोड़ी सी राहत मिल जाए । क्योंकि डाकू श्रीराम जब एकदम से नेता बन गया तो उसके जीवन-शैली में परिवर्तन आ गया था । पढ़ा-लिखा नहीं होने के कारण सभाओं में विरोधी उसका मखौल उड़ाने लगे । बात सही भी थी, और यह तो थी ही 'राजनीति' । तो उनके शुभचिंतकों ने उनका मन बहलाने के लिए अल्मा को पेश किया। परंतु अल्मा की शरीर में कोई हलचल नहीं थी । कठपुतली की तरह वह श्री-राम राम के आगे पड़ी रही । ऐसा ही कुछ दिनों तक चलता रहा और फिर एक दिन उसने आत्मसमर्पण किया ; लेकिन हारकर नहीं बल्कि जिंदा रहने के ख़ातिर ।

" उसके मन में बसी दुनिया आस-पास फैली है । सीधे-साफ ढंग से वह सोच रही रही है-यह रास्ता पार करना ही होगा । भागकर भी कहाँ तक जाएगी ? फिर कोई ऐसा ही खतरनाक हाथ आएगा, नए सिरे से नंगा करेगा । हर आदमी की एक ही भूख...बप्पा से खरगोश और शेर की कहानी सुनी थी-खरगोश अपनी बारी पर शेर के पास तक खुद चलकर गया था । बप्पा से पद्मिनी की कथा सुनी थी-पद्मिनी सुलतान के पास खुद गई थी । पर खरगोश के साथ गई थी उसकी बुद्धि और पद्मिनी के संग चली थी बदले की भावना ।" [11]

उसी प्रकार श्रीराम शास्त्री को मारने के लिए अल्मा ने उसके सामने आत्मसमर्पण किया था । परंतु वह ऐसा नहीं कर पायी, क्योंकि ज्ञान बीच में आ गया था । शास्त्री अपने पर्चे उससे पढ़वाने लगे थे, वह अँग्रेजी भाषणों का हिन्दी अनुवाद कर देने लगी । जिसके बाप ने आजीवन शिक्षा का मान रखना चाहा, उसकी बेटी आज शिक्षा के मोह में पड़कर बदला नहीं ले पा रही थी । लेकिन उसके मन में आशा की किरण अभी मौजूद थी । क्योंकि वह जानती थी कि यहाँ रहकर वह राणा को ढूंढ पाएगी, धीरज बाबु का पता लगा पायेगी-जिसने उसके प्राणों की रक्षा की थी । उधर अल्मा को भगाने के जुर्म में सुरजभान ने धीरज को मौत से भी बत्तर सजा दी थी । उसके पालतू कुत्तों ने उसे नपुंसक बना दिया था । राणा का गाँव अब धीरज का ठिकाना था । अल्मा से दूर होने के बाद राणा भी बैचेन था, पर उसके अहं ने उसे अल्मा के पास जाने से रोका । परिणाम स्वरूप राणा को रामसिंह कि हत्या की ख़बर मिलने के बाद जाकर उसे होश आता है । लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी । दुर्जन ने अल्मा को सुरजभान के हाथों बेच दिया था। उसके बाद से राणा की मानसिक स्थिति बिगड़ती गई और शायद धीरज वहाँ नहीं गया होता तो वह जीने की इच्छा भी त्याग ही देता । धीरज ने राणा और कदमबाई के मन यह विश्वास दिलाया कि वह अल्मा को खोज के निकालेगा और दोनों का मिलन अवश्य ही होगा । जहाँ चाह, वही राह । धीरज ने अल्मा को खोज निकाला । उसे एक बार गाँव में लेकर भी आया । माँ-बेटे की दुनिया में उम्मीदों के किरण फिर से जगमगा उठा । परंतु अल्मा के कुछ तय कर पाती, उससे पहले शास्त्री की हत्या कर दी जाती है । इस हत्या ने मानो अल्मा के जीवन को एक नए मोर पर

लाकर खड़ा कर दिया । तथाकथित रीति-रिवाजों को तोड़ती हुई अल्मा ने बेतवा नदी के किनारे शास्त्री के चिता को अग्नि देती हैं । और उसके बाद उसके बढ़ते कदम राणा और कदमबाई की तरफ आगे बढ़ जाती है । शास्त्री के मौत ने प्रदेश की राजनीतिक वातावरण को बदलकर रख दिया था । जहाँ अब अल्मा को शास्त्री के पद के लिए दावेदार माना जा रहा था । जीने के दिनरात संघर्ष करने वाली अल्मा एक दिन प्रदेश की राजनीति में हलचल पैदा कर देगी, ऐसा कोई सोच भी न सकता था । परंतु यह सच था । मैत्रेयी पुष्पा ने यहाँ एक स्त्री की संघर्ष की ऐसी गाँथा लिखी हैं जिसने जीवन को सबसे ज़्यादा महत्त्व दिया और जीने के लिए लगातार लड़ती रही । हजारी प्रसाद जी ने यू ही नहीं कह दिया था कि 'जिजीविषा' सबसे बड़ी चीज होती है । न-जाने ऐसे ही कितने अल्मा आज हमारे समाज में घूम रही हैं !! एक बिलुप्तप्राय जनजाति की स्त्री को अपने उपन्यास की नायिका बनाना मैत्रेयी पुष्पा के लिए सहज न रहा होगा । बड़े बेबाक ढंग से पुष्पा ने कबूतरा जाति के दुखों को उजागर किया हैं; जिसे पढ़कर उनके दैनंदिन जीवन की दुखद छवि पाठकों के मानसपट में प्रतिफलित होने लगती हैं । अंत में अल्मा को अगले चुनाव का उम्मीदवार बनाते हुए कथाकार ने इन बात की तरफ इशारा किया हैं कि अब जाकर आदिवासियों की समस्याओं का समाधान संभवपर होगा ।

प्रासंगिकता :

प्रस्तुत उपन्यास अपने में ही एक सार्थकता रखता है । यहाँ के पात्र पाठकों के से छल नहीं करते हैं । जो जैसा हैं वैसा ही पाठकों को प्रतीत होता हैं । क्योंकि यह कथा किसी शहर या विकसित गाँव की नहीं हैं; जहाँ लोग मुखौटे पहने हुए होते हैं । यह तो उन लोगों की कथा है; जिन्हें हर दिन तीनों वक्त का पर्याप्त भोजन भी प्राप्त नहीं होता हैं । कथा की मूल विशेषता अल्मा के संघर्ष में ही छिपी है, जो जीवित रहने का संकल्प कभी न छोड़ती, कभी उम्मीद का दामन न छोड़नेवाली अल्मा बहुतों के लिए प्रेरणा-स्रोत बन सकती हैं । उम्मीद बहुत बड़ी चीज होती है । कथाकार ने इस सकरात्मक भावना को पाठकों तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है

। अगर मनुष्य ठान लें तो हर मुसकिल से मुसकिल राह से भी सफल होकर निकल सकता हैं- अल्मा के चरित्र से यही सीख पाठकों को भी लेनी चाहिए ।

3.2.रीता चौधुरी के उपन्यास: प्रतिपाद्य एवं प्रासंगिकता:

असमीया साहित्य के कथाकार रीता चौधुरी का उपन्यास-क्षेत्र भी विशाल हैं । परंतु अध्ययन की सुविधा हेतु केवल चार उपन्यासों को ही यहाँ प्रमुख रूप से लिया गया हैं । *देउलांखुई, एई समय सेई समय, पपीया तरार साधु, मायाबृत्त* इन चारों को प्रमुख रूप में लेकर ही यह शोध-कार्य आगे बढ़ा है । इन चारों उपन्यासों के प्रतिपाद्य का यहाँ विश्लेषण किया जाएगा और साथ ही उन उपन्यासों की प्रासंगिकता पर भी चर्चा की जाएगी, जहाँ नारी हृदय की व्यथाओं का मार्मिक चित्रण हुआ हैं ।

देउलांखुई:

'देउलांखुई' का अर्थ है एक ऐसा तलवार जो दैव-शक्ति प्रदत्त हैं। 'देउ' माने 'देव', 'लांखुई' माने 'तलवार' । कथा के अंतिम सम्राट के पास यह तलवार थी । कथा का विकास कुछ प्रकार हुआ हैं-जितारी वंश के महा-शक्तिशाली राजा प्रतापचंद्र की रानी थी चंद्रप्रभा । क्षत्रिय वंश की कन्या 'चंद्रप्रभा' एक सहज-सरल एवं अत्यंत सुंदरी होने के साथ साथ अन्य सभी गुणों की अधिकारी भी रही । अपनी इच्छाओं को राज परिवार के लिए त्यागती, किन्तु इस फूल सी कोमल सी युवती को उपहार के रूप में 'देश' से निकाल दिया गया । उसके पति प्रतापचंद्र ने उसका त्याग कर दिया; और कसम खा लिया कि जीवन में दुवारा कभी उसका मुँह नहीं देखेंगें । इन सबके पीछे मात्र यह कारण था कि जब राजा के नयी राजधानी के उत्सव में रानी नदी में गिर जाती हैं; तब एक अनार्य राजा उसकी प्राणों की रक्षा करता हैं । मात्र एक अन्य व्यक्ति के छू लेने के कारण ही राजा प्रतापचंद्र ने रानी चंद्रप्रभा के चरित्र पर संदेह किया, उन्हें बदचलन कहा; जबकि रानी उस समय गर्भमती थी । उत्सव के आनंद ने उसकी खुशी दुगनी कर दी थी । जिसके कारण अपने रानीपन को भूलकर वह सारा दिन चंद्रप्रभा ने एक साधारण युवती की तरह

उल्लास में व्यतीत कर दिया था । इस खबर से अंजान राजा प्रतापचंद्र ने अपने अहंकार और अधिकार के चलते रानी को चरित्रहीन समझ बैठा । वही राजा जो अपनी पत्नी से अत्यधिक मात्रा में प्रेम करता था, जिसे बिना देखे वह क्षण-भर भी नहीं रह सकता था; वही किसी दूसरे पुरुष के छू लेने मात्र से अपनी पत्नी का त्याग कर देता है । बस इतना ही सार्थक था उनका प्रेम, विश्वास...!! निष्काशन की उस रात 'चंद्रप्रभा' मौन थी ; अपने प्रेम और विश्वास के घड़े को अकारण ही टूटते हुए देखकर वह हैरान थी; अपने आप से वह प्रश्न कर रही थी,

"क्या पति-पत्नी के बीच का बंधन इतना शिथिल है जो केवल किसी के स्पर्श मात्र से समाप्त हो सकता है ?" [12]

जिसे चंद्रप्रभा अपना भाग्य मान बैठी थी, उसे अब उसी भाग्य पर तरस आ रहा था । अपने आराध्य पति का विवेकशून्य एवं अहंकारी रूप को देखकर वह निश्चित रूप में आश्चर्यचकित रह गयी थी । राजा प्रताप ने जब रानी चंद्रप्रभा को 'गोभा' के राजा 'साधुकुमार' के साथ चले जाने का आदेश दिया तब चंद्रप्रभा अत्यंत दुखी हुई थी ; परंतु उसे इस बात का ज्यादा गम था कि पति-पत्नी जैसे पवित्र संबंध का धागा इतना कमजोर निकला ! वह गोभा राज्य के सम्राट से अनुरोध करती हैं,

" गोभा सम्राट, सच और झूठ के बवंडर में फँसकर राह भटकने की जरूरत ही भला क्या है ? उच्च-वंश, उच्च क्षमता , उच्च वैभव की गौरव से गर्वित आर्य नरपति के राजगृह का सुख मैं भोग चूकी । और यह भी देख चूकी कि किस कदर छोटी सी घटना पर वहाँ नारी की मर्यादा को पाँव तले कुचल दी जाती है । मैं स्वयं इस मर्यादाहीन जीवन से मुक्त होना चाहती हूँ सम्राट – मुझे ले चलिए ।" [13]

गोभा साम्राज्य में आकर चंद्रप्रभा ने पहली बार स्वतंत्रता के सुख को महसूस किया ; यहाँ नारी की मर्यादा किसी पुरुष के पेरों तले नहीं बल्कि उनकी इच्छा का भी मान किया जाता हैं । चंद्रप्रभा की हमउम्र लड़कियों को तो यहाँ शादी के लायक ही नहीं समझा जाता हैं । उसे अपने

अतीत से बाहर आने में काफ़ी समय लगा, और यह स्वाभाविक भी था । लेकिन चंद्रप्रभा ने अपने जीवन की चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार किया और 'कनचारी' का नया चोला पहनकर गोभा-साम्राज्य में अपनी स्थिति बुलंद की थी । उपन्यासकर के शब्दों में,

"ब्रह्मपुत्र के किनारें अपनी शव को ख़ुद जलाकर उसी चिताभस्म से चंद्रप्रभा ने 'कनचारी' बनकर पुनःजन्म लिया ।" [14]

बहुत कम समय में ही कनचारी ने जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं । अपने पुत्र द्वारा अपने ही पति की हत्या तथा अपने पौत्र द्वारा अपने पुत्र की हत्या जैसे भयानक हादसों की साक्षी वह स्वयं थी । फ़िरभी उसने अपने आप को संभाला, सम्पूर्ण गोभा साम्राज्य को मानसिक रूप से आश्रय प्रदान किया । गोभा की प्रजा के लिए वह क्रमशः रानी व राजमाता रही हैं । उसके चरित्र पर कभी भी किसीने छू तक नहीं बोला ; और न ही उसे पराया समझा । बल्कि उन्होंने गोभासम्राट के सिद्धांत को समर्थन करते हुए सहर्ष अपने देश के अतिथि के रूप में स्वीकारा । समाज ने विचार करके अपना राय दिया, और उसे गोभा के राजा ने चंद्रप्रभा के सामने रखा,

" आपको हमारे समाज ने अपना समझकर स्वीकारा है रानी साहेबा । आप सम्मानसहित इस राज्य में रह सकती है । हमारा समाज आपके साथ है । वे प्रतापचंद्र से बहुत नाराज़ हैं । आप बेफिक्र रहिए रानी साहेबा और इसे अपना घर, अपना राज्य समझिए । इस विचार-सभा में आपको बुलाए जाने पर बुरा मत मानिएगा । सभी पक्षों के बातों को सुने बगैर हमारे समाज के लोग कोई सिद्धान्त नहीं लेते हैं । इसीकारण आपको बुलाना पड़ा । मैं राजा हो सकता हूँ---परंतु हमें भी समाज के नियमों का पालन करना पड़ता हैं ।"[15]

गोभा के प्रजा के इससिद्धांत ने चंद्रप्रभा को जैसे एक नया जीवन प्रदान किया और उसने भी आजीवन इस अहसान का मोल अपने दायित्व से चूकाया । जब जब गोभा पर विपदा आई ; तब कनचारी चट्टान बनकर उस आफ़त के सामने खड़ी रही । साथ ही उस बुरे छाए को दूर करके ही वह दम लेती हैं । उसे जिस जनता ने अपनाया उनकी खुशी एवं राज्य की उन्नति के हेतु

कनचारी ने हर मुमकिन कोशिश की; यहाँ तक कि अपने पुत्र की मृत्यु के समय भी अपनी प्रजा को शांत रखने हेतु वह अपने आँसुओं को पी गई । आँसू की एक बूंद भी उसने गोभा की मिट्टी पर गिरने न दिया । क्योंकि उसे पता था कि अगर गोभा की राजमाता ही टूट जाएगी तो उनकी प्रजा का क्या होगा ? कनचारी के अपार धैर्य को देखकर समग्र गोभावासी चकित रह गए थे । अपने दुखों को समेटकर उसने अपने पौत्र जकांक को समझाया, उसके मन के घाँव पर मरहम लगाया, जो उस समय अपने पितृ की हत्या का भार शिर पर लादे हुए, जीवन के विसंगतियों के भँवर में फँस चुका था । उस जकांक को रोशनी का मार्ग दिखाती हुई चंद्रप्रभा कहती है,

" मैं एक शास्त्रज्ञानहीन नारी हूँ । परंतु जीवन के अनेक घटनाओं को देखकर मैंने जो समझा उसके आधार पर यह बात तो कह सकती हूँ कि- सन्यास लेना अर्थहीन है । जीवन के दुखों को देखकर मूँह फ़ैर लेना गलत है । जीवन के अच्छाईयों की तरफ़ देखते हुए तहराव के साथ कदम बढ़ाकर जीना चाहिए"[16]

प्रस्तुत उपन्यास अंत में जाकर होता यह है कि कनचारी का पौत्र जकांक एक षड्यंत्र में मारा जाता हैं और गोभा साम्राज्य के भावी सम्राट के बालक रहने के कारण साधुकुमार और कनचारी को ही पुनः राजकाज संभालना पड़ता है ।

प्रासंगिकता:

यद्यपि इस उपन्यास का समय इतिहास से जुड़ा हुआ है फिर भी इसकी कथा प्रासंगिक है । ऐतिहासिक समय से लेकर आज तक हर क्षेत्र में नारी का योगदान अपरिसीम रहा हैं- प्रस्तुत उपन्यास भी जैसे इसी बात को दोहराता है । गोभा राज्य की राजनीतिक क्षेत्र में राजमाता चंद्रप्रभा की जो देन रही हैं, उसे प्रजा ने सहर्ष स्वीकारा हैं और उसे वह सम्मान भी प्रदान किया है । एक रानी बनकर स्त्री जो खोज न पायी वही एक साधारण स्त्री होकर उसे प्राप्त हो जाता है । कहने का आशय यह है कि अगर स्त्री अपने अस्तित्व को पहचानना चाहे तो उसे

अपने आप में झाककर देखना होगा; फिर चाहे वह रानी ही क्यों न हो !! इस कथा के माध्यम से कथाकार ने यह समझाने का प्रयंत किया है कि परिस्थिति व समय चाहे जैसा भी क्यों न हो अगर कोई मनुष्य अपने आप को प्रतिष्ठित करने का निरंतर प्रयास करें तो एक न एक दिन वह जरूर सफल होगा, यहाँ प्रतिष्ठा का अर्थ धन-दौलत नहीं, बल्कि आत्मसम्मान है ।

एई समय सेई समय :

'एई समय सेई समय' का अर्थ है 'यह समय और वह समय' । असम की राजनैतिक पटभूमि में रची गई यह उपन्यास असमीया साहित्य में अत्यंत चर्चित व सफ़ल उपन्यास मानी जाती हैं । असम आंदोलन की पटभूमि में रचित प्रस्तुत उपन्यास में असमवासियों के पुराने दिन व संघर्ष की गाथा हैं । इस उपन्यास में दो युगों का समांतराल रूप से समायोजन किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने उपन्यास में चित्रित पात्रों के द्वारा वर्तमान और अतीत को महसूस कर उसे भोगा हैं । असम के लोगों की मानसिकता के साथ साथ उस समय की राजनीतिक परिस्थिति को भी यहाँ दर्शाया गया हैं ।

उपन्यास की प्रमुख नायिका अदिति हैं , जिसने कभी असम के स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया था और तत्कालीन समय की अनेक घटनाओं की साक्षी भी रही । अदिति का चरित्र पढ़ते पढ़ते पाठकों यह भ्रम हो जाता है कि कही अदिति 'रीता चौधुरी' का ही तो प्रतीक नहीं है ?? बाद में जब अदिति आंदोलन से जुड़े लोगों को देखती तो उनके विचारों के परिवर्तनों को देखकर बड़ी हैरान होती हैं । पर अब सवाल यह उठता है कि इन सबसे नारी संवेदना का क्या संबंध है ? संबंध है और वह भी अत्यंत गहरा; अदिति अपने अतीत को लेकर वर्तमान में जीती है, अपने साथियों के प्रति सहानुभूति रखते हुए समाज के तीक्ष्ण वाक्यवाणों को वह सहती हैं । आंदोलन में हिस्सा लेने के कारण अब भी उसे लोगों के सवालियाँ नज़रों का सामना करता पड़ता हैं । इन सबके बाद भी वह अपने आप को समाज में प्रतिष्ठित करने में सक्षम हो पाती हैं ; हिम्मत के साथ हर एक परिस्थिति का सामना करती हैं, यह निःसंदेह किसी चुनौती से कम

नहीं है । अदिति यद्यपि असम आंदोलन की सक्रिय सदस्य रही हैं परंतु उसने हमेशा संगठन के गलत फ़ैसलों के खिलाफ़ आवाज उठाई और शायद इसीलिए वह आंदोलन के परवर्ती समय में खुदको उससे अलग कर लिया । जिस व्यक्ति से वह प्रेम करती थी, परंतु कुछ कारणों के चलते उसके साथ अदिति का विवाह संभव नहीं हो सका । उस नाज़ुक समय में अदिति के पास उसका हाथ थामे खड़ा था 'चन्दन', चन्दन फुकन; जो आगे चलकर विशिष्ट राजनीतिज्ञ बन जाते हैं । अदिति की शादी उनसे हो जाती हैं । अदिति के पति आंदोलन के परवर्ती समय में असम की राजनीति के क्षमताशाली पद पर अधिष्ठित हो गए । परंतु अपने अस्तित्व के पहचान लिए अदिति ने कभी भी उनके नाम का सहारा न लेते हुए स्वयं संघर्ष करते हुए अपनी एक नई पहचान बनाई । संगठन के सक्रिय सदस्य अरण्य और श्यामली के संतान को अदिति ने अपना नाम दिया और उसे कभी यह महसूस होने नहीं दिया कि वह उसकी अपनी संतान नहीं हैं ; वह तो बाद में जब वह बड़ी हो जाती हैं तब हालातों के चलते उसे यह सच मालूम पड़ता हैं । लेकिन शुरू-शुरू में उसके पति चन्दन ने इस बात का समर्थन नहीं किया था और उस बच्चे को अपने घर में रखने से इंकार कर दिया । उसका मानना था कि एक विपल्बी योद्धा का संतान एक राजनीतिविद के घर में नहीं पल सकता है; तो बस अदिति वहाँ से चली आयी...और काजरि को भी अपने साथ ले आयी । अपने आदर्शों के रक्षा हेतु अदिति ने कभी अपने पति के मंत्रित्व के दौरान मिलने वाली सुविधाओं को ग्रहण नहीं किया । दूर एक पहाड़ी इलाके पर उस छोटी सी बच्ची को लेकर अदिति रहने लगी । अपने नन्ही ही परी का नाम रखा 'काजरि'। काजरि और अदिति बहुत खुश थी और 'कस्तुरी' के आने से यह खुशी दुगनी हो गयी । कस्तुरी को अदिति ने गोद लिया था, एक रोज़ सुबह जब अदिति काजरि को लेकर प्रातःभ्रमण कर रही थी ; तभी कस्तुरी उन्हें सड़क किनारे पड़ी मिली थी । अदिति का कोमल मन इस दृश्य को देखकर अत्यंत दुखी हो गया था और तभी उसी क्षण उसने उस नन्ही सी जान को अपना लिया। परंतु इन खुशिओं में एक अर्चन यह था कि कस्तुरी के आ जाने से काजरि अदिति से दूर हो गई । उसे कस्तुरी आना पसंद नहीं हुआ; उसे ऐसा लगा कि उसके हिस्से के प्यार, खुशी, सुख-सुविधायें

सभी का अब बटवारा होगा । सभी में कस्तुरी का भी अधिकार रहेगा । जो चीजें केवल उसकी थी अब उन सब को उसे किसी दूसरे के साथ बाँटना होगा । अगर माँ कस्तुरी को रास्ते से उठाकर न लाती तो ऐसा कभी न होता । वह उससे नफ़रत करती थी, और बदले में कस्तुरी अपने दीदी पर जान छिड़कती थी । उसने अपनी पहली कहानी-संग्रह को काजरी को समर्पित किया था । काजरी के साथ वह अपनी हर छोटी छोटी खुशी को उसके साथ बाँटना चाहती । हर बात पर उसकी राय मांगती फ़िरती, खाने से लेकर पहनने ओड़ने तक हर बात के लिए वह काजरि के पीछे पड़ी रहती । इन सबके बदले काजरि को हरपल ऐसा लगता कि उसके और उसकी माँ के बीच तीसरा कोई आ गया; कस्तुरी को प्यार करना तो दूर की बात, वह तो उसे अपनी बहन भी न मानती थी । इन तीन विपरीत नारी पात्रों के द्वारा उपन्यासकार ने युग की मानसिकता को परखने का प्रयंत किया हैं । अदिति को इस दरार के बारें में पता था और शायद इसी दरार को भरने के लिए उसे फ़िर से अपनों के बीच यानी अपने साथियों के बीच लौट आयी । काजरि के अंतर्मुखी प्रवृत्ति के विपरीत कस्तुरी अत्यंत कोमल व संवेदनशील स्वभाव की थी; जो अपनेपन से सभी को अपना बना लेती थी । जब काजरी को अपने अस्तित्व की सच्चाई मालूम पड़ी थी कि वह किसी और की संतान है, तब वह पूरी तरह से टूट चुकी थी । कस्तुरी के सामने अपने आप को अपराधी मान रही थी । पर एक कस्तुरी थी, जिसने अपने बहन को सहज बनाने का बहुत प्रयास किया था । काजरी को समझाते हुए वह कहती हैं कि, “ ऐसे मत सोचना दीदी । एक ही छत के नीचे रहने पर कभी एक दूसरे को एक दूसरे के लिए कष्ट उठाना पड़ता है । वह केवल क्षणिक होता हैं । असली प्यार कभी ख़तम नहीं होता है...वह तो कभी कभी छिपा रहता हैं, जिसे हम देख नहीं पाते हैं, समझ नहीं पाते है । थोड़ा ध्यान देने से ही हम उसे देख सकते है और समझ भी सकते हैं ।”[17]

अदिति, कस्तुरी, काजरि इन तीनों पात्रों से यह उपन्यास उज्जीवित हैं । तीनों एक दूसरे से जुड़े भी हैं और अलग भी हैं । उनके विचार व मानसिक द्वंद में भिन्नता हैं परंतु कार्य में एकरूपता हैं। तीनों समाज के प्रति अपनी दायबद्धता को स्वीकारती हैं । प्रस्तुत उपन्यास में असम के

राजनीतिक एवं सामाजिक दोनों तरह के परिस्थितियों को दिखाया गया हैं । समाज के तथाकथित अभिजात लोग किस तरह पैसे का रोब दिखाकर दोहरी जिंदेगी जीते हैं ; राजनीति के क्षमताशाली लोग किस प्रकार अपने पद व अधिकारों का गलत इस्तेमाल करते हैं- इन सबका सुंदर व चाक्षुक वर्णन उपन्यास में प्रस्तुत किया हैं । कथा के केंद्र में अदिति हैं , जिसके इर्द-गिर्द बाकी किरदार अपनी भूमिका निभाती नज़र आती हैं । अदिति अपने पति से दूर रहती थी, परंतु इसका तात्पर्य कतई यह नहीं था कि उसे उनका साथ पसंद नहीं था । इस फ़ैसले का मूल कारण था उनके विचारों में निहित पर्याप्त अंतर । पूरे उपन्यास में 'सुकन्या' नामक एक लड़की हैं, जिसने उपन्यास को एक भिन्न स्वाद दिया, जो सीधा पाठकों के दिल में उतारने सफल हुई हैं । वह कस्तुरी की सहेली होने के साथ साथ अदिति के दोस्त की बेटी हैं । जो आधुनिक विचारों को वहन करती हैं, सच्चाई और हिम्मत से हर मुसकिलों का सामना भी करती हैं । कथाकार ने नारी जीवन के विविध दिशाओं व कठिनाईओं को दिखाने के लिए सुकन्या नामक पात्र की स्रजना की । जो हर परिस्थिति का सामना करती हैं, वह भी अपनी अंदाज में, वह न तो किसी से डरती है और न ही अन्याय के सामने झुकती हैं । उपन्यास में 'मणि' नाम की एक लड़की हैं, सेना के जवानों ने जिसके साथ दर्दनाक शारीरिक अत्याचार किया था । घटना के बाद उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया था । तो इस प्रकार से भिन्न भिन्न किरदारों के माध्यम से रीता चौधुरी ने नारी-संवेदना के भिन्न पहलूओं को इस उपन्यास के जरिये उजागर किया हैं ।

प्रासंगिकता:

नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के विचारों में बड़ा फ़ासला हैं और इस फ़ासले को मिटाने के लिए दोनों पीढ़ीओं को आगे आकार हाथ मिलाना होगा, यह संदेश भी प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा कथाकार ने पाठकों तक पहूँचाया हैं। उपन्यास के अंत तक आते आते काजरि को अपने प्रकृत पिता का परिचय प्राप्त हो जाता हैं और वह यह महसूस करने में समर्थ हो जाती हैं कि वह जिस

अधिकार से कस्तुरी को अपने से नीचे समझती थी, प्रकृतार्थ वह सब मिथ्या है । कस्तुरी भी अपने दीदी से खोया हुआ स्नेह को पाकर खुश हो जाती हैं । अदिति अपने आप को अतीत के गर्भ से निकालने में समर्थ हो पाती हैं और साथ ही अपने पुराने साथियों को भी सही राह तक आने के लिए प्रोस्ताहित करती नज़र आती हैं । अपने दोस्तों के साथ मिलकर अदिति ने असम आंदोलन के इतिहास को पुनः उज्जीवित किया । नए और पुराने- सभी मिलकर ही एक नए और स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं ।

पपीया तरार साधु:

'पपीया तरा' अर्थात 'गिरता हुआ तारा'प्रस्तुत उपन्यास की कथा गाँव की एक साधारण लड़की 'जेउति' पर आधारित हैं । जिसके आँखों में पत्रकार बनने के सुनहरे सपने हैं । उसका परम मित्र 'कमल' उसी गाँव में किताबों का विक्रेता हैं और साथ ही उससे विशेष स्नेह रखता हैं । जेउति के जीवन में भी उसका महत्वपूर्ण स्थान हैं । कथा कुछ ऐसे आगे बढ़ती है कि एकदिन शहर के एक बहुत बड़े पत्रकार जेउति के गाँव के उत्सव में भाग लेने आते हैं तो उनसे उसकी मुलाक़ात हो जाती हैं । 'सुबिमल फुकन' राज्य के श्रेष्ठ पत्रकारों में गिने जाते हैं । सुबिमल जेउति की लेखनी व कविताओं की तारीफ़ करता हैं । तो बच, और क्या था...जेउति के स्वप्नों को मानों पंख मिल गए थे और अब वह उड़ना चाहती थी,,बहुत ऊँचा और बहुत दूर तक जाना था उसे...! शहर के चाल-ढाल से अपरिचित जेउति शहर आकर सबसे पहले तो अपनी पहचान की दीदी के साथ रहने लगी; पर जैसे जैसे सुबिमल फुकन के साथ उसका मिलना-जुलना बढ़ता गया , तब उसने अपने अलग से इंतेजाम कर लिया । जेउति को मानो ऐसा लगने लगा कि सफलता की गाड़ी खुद चलते हुए उसके पैरों से टकरा गई है । एक एक करके उसके भिन्न संवाद व लेखनियाँ छपने लगी । इधर कविता के क्षेत्र में वही हाल था। जेउति प्रशंसा की आदि नहीं थी, इसीलिए बड़े बड़े लोगों की प्रशंसा एवं उनके संग ने उसके मन के अहं को घमंड में परिवर्तित कर दिया । उसके चाल ढाल और सोच में अब परिवर्तन होना स्वाभाविक था । यहाँ

तक कि 'कमल' जब गाँव से उससे मिलने आता है तो उससे ही जेउति अपरिचित सा व्यवहार करती है । यह संसार दो प्रकार के लोगों से बना हैं- अच्छाइयाँ हैं तो यहाँ बुराइयाँ भी हैं । अगर बुराइयाँ एकदम से नहीं होती तो मानव अच्छाई का मोल कैसे समझ पाते ? पत्रकारिता के जगत में भी तो ऐसा ही है । यहाँ दोनों तरह के लोग थे । अच्छे लोगों के पास इज्जत थी, पर न तो यश था और न ही सम्मान(?)व धन; इधर बुरे लोगों के पास यश, धन, सम्मान(?) सबकुछ था । गाँव से आई जेउति दूसरे प्रवृत्ति के लोगों की ओर आकर्षित हुई; और यह आकर्षण स्वाभाविक भी था क्योंकि उसके मन में एक महान और प्रख्यात पत्रकार बनने का ख्याब था । उसकी आकांक्षाएँ बहुत ऊँची थी । आसमान की बुलंदियों को छूना चाहती थी वह... उसके घरवाले और कमल उसके शहर आने के फैसलें से खुश नहीं थे क्योंकि उन्हें पता था कि जेउति का कोमल मन समाज कठोर वास्तव तथा लोगों के जटिल मन को नहीं पढ़ पाएँगी । परंतु जेउति के मन में एक धुन सवार था, उसने किसी एक की नहीं सुनी और जिद करके अकेले ही शहर चली आई, यथा,

" मैं गुवाहाटी जाऊँगी, जाऊँगी, जाऊँगी....चाहे कमल कहे, माँ कहे या चाहे पिताजी कहे, मैं किसी की बात नहीं सुननेवाली, मैं सब को दिखा दूँगी,- मैं प्रतिभाहीन, दुर्बल और अच्छे-बुरे के समझ नहीं रखनेवालों में से नहीं हूँ ।" [18]

और उसके बाद वहीं हुआ जिसका डर था... पत्रकारिता जगत के गलत लोगों ने पहले तो उसे यश और उन्नति का लोभ दिखाकर सस्ते रास्ते की ओर भटकाया और बाद में उन सब ने मिलकर बारी बारी से जेउति का शारीरिक शोषण किया । उन्नति के पथ पर किसी ने उसके शरीर को मांगकर लिया तो कभी किसीने उसको छीना भी । जिन लोगों ने उसके हितैषी तथा प्रेमी होने का दावा किया , उन सबसे जेउति को केवल और केवल धोखा ही मिला । धीरे धीरे उसे यें सब समझ में आने लगा ; इससे पहले की वह संभलती और अपने आप को आनेवाले मुसीबतों से बचा पाती, वह गर्भवती हो जाती हैं । जो इसके प्रति जिम्मेदार था, खबर सुनते ही उसने जेउति को उपेक्षित कर दिया । इतना ही नहीं कथा की इस पड़ाव तक आते आते जेउति

पत्रकारिता तथा राजनीति के बेईमान और नीच लोगों के बीच की एक कठपुतली बन चुकी थी। जो जैसे चाहे वैसे उसको नचाते थे। गर्भवती अवस्था में जेउति इन दोनों दानव सेनाओं की मिलीजुली षड़यंत्र की शिकार बन जाती हैं। उसी अवस्था में उसका सामूहिक बलात्कार किया गया और सारा इल्ज़ाम एक बेक़सूर समाज सेवी राजनीतिक नेता पर दे दिया गया। इस घटना से समग्र राज्य हिल उठता हैं। जेउति के शुभचिंतक और घरवालें इसका तीव्र विरोध करते हैं। पर भारत का कानून और संविधान हर फैसले के लिए सबूत मांगती हैं और जेउति ही यहाँ सबूत और गवाह दोनों थी। जीवन ने उसको आखरी मौका दिया था पर बिचारी उसका भी लाभ नहीं उठा सकी। जब गवाही देने का समय आया तब उसके सामने दो रास्ते रखे गए- एक तो वह गवाही दे और दूसरा वह बिलकुल मौन रहे। जेउति ने दूसरा रास्ता चुना....पर क्यों ? इसका उत्तर किसीके पास नहीं था, सिवाए जेउति के....और जेउति; जीवन के युद्ध में हारती हुई , थकती हुई अपने गाँव लौट आती है। धीरे धीरे वह स्वस्थ भी होती है पर उसका मन उसका साथ छोड़ चुका था, हिम्मत हार चुकी थी, अपने आप से वह नजरें नहीं मिला पा रही थी और एकदिन उसने अपने शरीर को भी त्याग दिया। घरवालों ने, कमल ने उसे बहुत समझाने का प्रयंत्न किया था, उनकी बातों को, उनके प्यार को महसूस कर वह और ज़्यादा दुखी हो जाती थी। ग्लानि की भावना उसके भीतर घर कर गई थी। ...और इसी भावना ने एकदिन उसके प्राण ले लिए; उसने आत्महत्या कर ली। अब आते है उस कारण की और, जिसके कारण जेउति ने अपना मुँह नहीं खोला। वह थी अर्पणा और उसका बच्चा सौरभ। अर्पणा भी उसी गाँव की लड़की थी, जहाँ जेउति का घर था। जेउति के लिए अर्पणा हमेशा प्रेरणा का स्रोत रही है, वह अर्पणा जैसी सफल और प्रख्यात साहित्यिक तथा पत्रकार बनना चाहती थी। अर्पणा के संघर्ष के बारें में उसे पता था पर उसके पीछे रही घटनाओं से वह बेख़बर थी। जिन लोगों ने जेउति को बहकाया था; उन सबने अर्पणा के ईमान को भी खरीदने का प्रयास किया था, उसको भोग की सामग्री की तरह देखते थे, उसके शरीर को लेकर तमाम बातें करतें थे और जल्दी ही तरक्की दिलवाले का वादा भी करते। परंतु अर्पणा को न यश का लोभ था और न ही अर्थ का, उसके लिए 'लेखन' उसकी

जिंदेगी थी...कोई बिकाऊ प्रतिभा नहीं ! अर्पणा के पति नबारूण ने भी हमेशा उसका साथ दिया था । दोनों सच्चे और ईमानदार पत्रकार के रूप में उस जगत में परिचित थे । अर्पणा ने जब जेउति का नैतिक पतन देखा तो वह उसे आगाह करना चाहती थी ; वह जेउति को आगाह करती उसी दिन उसके बेटे 'सौरभ' के दुरारोग्य बीमारी का पता चला था । जेउति से बात करने का मौका उसे दुबारा तब मिला जब वह अस्पताल में जिंदेंगी और मौत के बीच जूझ रही थी । जेउति को जब तक होश आया था तब तक वह फिर से अपने बेटे के इलाज के लिए दिल्ली चली गई थी, जब जेउति ने सारा सच कहना चाहा तो अर्पणा के पति ने जेउति से उसके बेटे के लिए मौनता की भीख मांगी और कहा,

" मुझसे नाराज़ मत होना जेउति । मेरी बात सुनो । यह मेरी प्रार्थना है, अर्पणा की प्रार्थना है । तुम्हारे चुप रहने से मनोरमा और उनके साथी हमें बहुत पैसे देंगे । तब हम सौरभ का इलाज कर सकेंगें और उसके इलाज के लिए हमें बहुत पैसों की जरूरत हैं । सौरभ के बिना मैं जीवित नहीं रह पाऊँगा- अर्पणा भी नहीं जी पायेंगी । हमें तुम्हारी मदद की जरूरत है जेउति-हमें मदद करो ।" [19]

अपने जीवन के आदर्श, गुरु व प्रेरणास्रोत के लिए उसने यह बलिदान दिया और चुपचाप इस संसार से दूर... बहुत दूर चली गई- जहाँ से कभी कोई वापस नहीं आता हैं। जाते जाते जेउति अपनी डायरी अर्पणा के लिए छोड़ जाती है, जहाँ उसने सारी बातों का खुलासा किया था । अर्पणा को जब उसके मौनता का कारण जान लेती है, तब वह अपने आपको माफ़ नहीं कर पाती है और अपने पति नवारुण को कोसती है; पर होनी को कौन टाल सकता है !!! प्रमाण हाथ में आ जाने के बाद अपर्णा जेउति को न्याय दिलाने के लिए संघर्ष करती है । इसी बीच उसके बेटे सौरभ की मौत हो जाती है । एक सच्चा और ईमानदार आदमी पैसों के अभाव से अपनी ज़मीर को बेचता है, किंतु नवारुण को पता था कि वह गलत है; इसीलिए वह अपर्णा से कहता है कि,

"...मुझे पता है अपर्णा, सौरभ क्यों चला गया!! मैंने गलत राह से पैसे लेकर उसे बचाने का प्रयास किया, मेरे पापों का फल हमारे बेकसूर मासूम बेटे को भुगतना पड़ा...जेति का यह हाल मेरे वजह से ही हुआ....इन सब के जिम्मेदार सिर्फ़ और सिर्फ़ मैं हूँ...।"[20]

प्रासंगिकता:

जेउति और अपर्णा की यह कहानी बहुत ही प्रासंगिक सिद्ध होती है । जहाँ कथाकार ने चुनाव का प्रश्न पाठकों के सामने रखा हैं । मोह और लालस बहुत बुरी चीज होती हैं, जो मनुष्य को जीवन में गलत राह तक खींचकर ले जाते हैं । जेउति के प्रसंग के माध्यम से कथाकार ने समाज को इन दोनों से सावधान रहने का संदेश भेजा है । जिस इन्सान को एक बार यश की लट लग जाती हैं, उसे वहीं लट बाद में ले डुबोती भी है । जेउति के साथ भी तो ऐसा ही हुआ । स्त्री के संदर्भ में लोगों की मान्यता यह रही है कि जेउति जैसी लड़कियाँ अपना काम शरीर के बदले में निकालवाती हैं; परंतु अपर्णा जैसी साहसी और ईमानदार लड़कियों के बारें में यह समाज क्यों मौन रहता है ? उनके साहस और दिलेरी के किस्से क्यों नहीं गाए जाते...? ऐसे अनेक सवाल पाठकों के लिए छोड़ चली हैं कथाकार । जिनका विश्लेषण वर्तमान समय में निसंदेह अत्यंत प्रासंगिक हैं ।

मायाबृत्त :

मायाबृत्त रीता चौधुरी द्वारा रचित एक लोकप्रिय उपन्यास है, जो पाठक वर्ग में अत्यंत चर्चित रही । मायाबृत्त नारी केद्रित उपन्यास होने के साथ साथ मनोवैज्ञानिक उपन्यास की कोटि में आता है । कथा की नायिका 'नीरा' एक बड़े घर की बेटी हैं । बचपन में वह दिखने में अच्छी नहीं थी, किन्तु उसका मन आईने की तरह साफ़ था । उसकी किसी से न तो दुश्मनी थी और न ही वह किसी से नफ़रत करती थी; उसके मन में हर किसी के बस प्यार था । लेकिन

इसके विपरीत उसके घरवाले उसके सावलेपन से परेशान थे, विशेषकर उसके पापा को वह पसंद नहीं थी। यहाँ तक के उसके भाई और छोटी दीदी भी उसे 'काली', 'भद्दी' आदि शब्दों से चिढ़ाते थे । बस कोई प्यार करता तो वह थी उसकी बड़ी दीदी 'मीरा' । नीरा घर की तीसरी बेटी थी । अपने बड़ी दीदी मीरा से उसे बड़ा लगाव था; मीरा गोरी थी, सुंदर थी । घरभर में केवल मीरा ही ऐसी थी जो नीरा को समझती थी । जिस दिन मीरा का देहांत हो जाता है, तब नीरा अपने आप को बिल्कुल अकेली पाती हैं । अपने दीदी के मृत्यु की घटना ने छोटी सी नीरा पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा । मीरा के क्रिया-करम के कुछ दिनों के बाद जब नीरा अपने भाई बहनों के साथ सो रही थी, उसके पिता ने उसकी माँ से कहा,

" भगवान क्यों मेरी बेटी मीरा को ले गए, अब मैं कैसे जी पाऊँगा; वह मेरे घर की लक्ष्मी थी वह ही इस दुनिया से चली गई.....काश उसके जगह पर यह पूति चली जाती..."[21]

एक पिता अपने ही मुख से अपनी पुत्री की मृत्यु की कामना कर रहे थे- यह सुनकर नीरा स्तब्ध हो गई थी । एक छोटी बच्ची के लिए यह निश्चित रूप किसी शाप से कम न था । फ़िर भी नीरा चुप रही, सब कुछ सहती रही क्योंकि उसके पास उसका एक दोस्त था, जो उसे समझता था; उसका हमदर्द था । 'सुबर्ण'-नीरा का विश्वास, संगी-साथी, परामर्शदाता और बहुत कुछ था । नीरा को ऐसा लगता था कि हर वह बात जो उसे परेशान करती, सुबर्ण के पास उन सबका का हल होता हैं और इसीलिए नीरा की निगाहें हरकदम पर उसे ही खोजती थी । जहाँ नीरा के पिता उच्च सरकारी पद पर विराजमान थे, वहीं 'सुबर्ण' के पिता उनके नीचे काम करते थे, वे परोसी थे । किन्तु नीरा के पापा को उन दोनों का मिलना-जुलना बिल्कुल पसंद नहीं था । एक तरफ़ पद की असमानता और दूसरी वजह यह थी कि वह लड़का और नीरा लड़की थी । नीरा के घरवाले जितना उन दोनों को दूर करने का प्रयत्न करते, उतना ही वे एक दूसरे को ओर करीब पाते, क्योंकि मनुष्य को एक विषय से दूर रहने के लिए जितना ही कहा जाता हैं वह उतना ही उस विषय के प्रति आकर्षित होता चला जाता हैं । पर जब 'सुबर्ण' के पिता का तबादला हो जाता है

तब नीरा की जिंदेगी में गम के बादल छा गए, वह बिलकुल अकेली हो गई; उसे समझने वाला घरभर में कोई न था । अपने हमराही के यू चले जाने से वह गुमसुम हो जाती है और अब वह किसी से भी खुलकर बात नहीं कर पाती हैं; नीरा दिन व दिन किताबों में डूबने लगी । नीरा का जीवन फ़िर से अधूरा हो गया; इस अधूरेपन के दौरान उसकी मुलाक़ात 'ब्रजेन' से होती है । जो एक व्यवसायी था; फिर भी साहित्य आदि से भी जुड़ा था । नीरा को बहुत चाहता था और उसे हमेशा खुश रखने का प्रयास करता। वह रईस था ; इसीलिए नीरा के घरवालों ने शादी के लिए उसे ना नहीं कहा । नीरा के पिता उन दिनों दुरारोग्य व्याधि के शिकार थे, उन्हें बहुत धन की आवश्यकता थी..संचित धनराशि भी शेष सीमा पर पहुँच चुकी थी । जिस पिता ने नीरा की मृत्यु के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी, नीरा ने अंतिम समय तक उन्हीं का खयाल रखा । जबकि उनके बाकी 'अच्छे' बच्चे उनको उपेक्षित करने लग थे । उसकी छोटी दीदी ने तो हर हद पार कर दी; पिता के हालत को देखते हुए भी पूरे ठाट से अपनी शादी करवा ली थी । दोनों भाई पैसों की समस्या को लेकर परेशान थे ; और माँ की हालत तो सबसे ख़राब...ऐसे वक्त में उनके पास नीरा ही एकमात्र साधन थी जो किसी समय पूरे घरभर में उपेक्षित रही थी । समय अपना रंग बदलता हैं, नीरा ने ब्रजेन से रिस्ता जोड़ लिया ; घर के लोग बहुत खुश थे , आर्थिक समस्याएँ जो कम हो गयी थी ! शादी के बाद भी नीरा का अकेलापन दूर नहीं हुआ ,बल्कि अब वह और ज्यादा अकेली पड़ती जा रही थी। शादी से पहले वह जिस ब्रजेन से मिली थी, शादी के बाद उसका दूसरा ही नज़ारा सामने आ रहा था। नीरा को प्रकृति से लगाव था ; पशु-पक्षियों से प्रेम था, पेड़-पौधों से उसे प्रेम था । इसके विपरीत नीरा का पति भौतिक विलास में ज्यादा विश्वास रखता था और नीरा के बातों को किताबी भाषण का नाम देकर हँसी-मज़ाक में उड़ा देता था । उसे हर पल सुबर्ण की याद सताती; क्योंकि दोनों के विचार एक दूसरे से मिलते थे । वे दो दिल एक जान थे, उनका प्रेम शारीरिक न होकर आत्मिक था । दोनों प्रकृति के गोद में जीना चाहते थे । शादी के बाद सुबर्ण से उसकी मुलाक़ात होती है और तब उसे यह पता चलता है कि उसका मित्र अब भी प्रकृति के राह पर ही चल रहा है और प्रकृति के सुरक्षा में ही अपने आप को समर्पित कर चुका हैं । इस

खबर का सकारात्मक प्रभाव नीरा पर पड़ता है । अंदर से कोमल और भावुक नीरा अब हिमालय के चट्टानों की तरह दृढ़ बनने लगी थी । जो लड़की अपने घर में उपेक्षित रही थी वही आगे जाकर एक सफल लेखिका के रूप में समाज में अपने आप को प्रतिष्ठित करती हैं । अपने विचारों व आदर्शों के माध्यम से समाज को जाग्रत करने का प्रयास करने लगी । प्रकृति के ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ़ आवाज़ उठाने न लगी । सुबर्ण के प्रेम को प्रेरणा के रूप में अपने अंदर धारण करती हुई नीरा आगे बढ़ती चली गई । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जल की स्वच्छल धारा सभी प्रकार के बाधाओं को पार कर बह जाती है । सुवर्ण ने नीरा से कहा था,

"नीर- यानिकी पानी; इसी नीर से बना है तुम्हारा नाम नीरा । पृथ्वी सुख जाते हैं, जल के बिना जीव जीवित नहीं रह सकता हैं और तुम जल की स्वच्छ और निर्मल हो ।" [22]

उसकी यें बातें नीरा के लिए किसी वेद-वाणी से कम न था । बचपन के दिनों में ही दोनों ने 'गोमुख' तक यात्रा करने का निर्णय लिया था ; यह उन दोनों का सपना था । अपने अतीत के सुनहरे पन्नों को यादों के चादर में लपेटे नीरा गोमुख तक चली आती हैं । यह यात्रा उसके के जीवनदायिनी शक्ति से कम न था, अपने जीवन को परखने का, सही-गलत आदि का हिसाब लगाने का इससे अच्छा माध्यम शायद और दूसरा न था । जंगलों की सुरक्षा के दौरान सुबर्ण के पैरों की काफ़ी क्षति होती है; इस बजह से वह नीरा के साथ नहीं आ पाता हैं । परंतु वह शरीर से न होते हुए भी मन से पूरी यात्रा में नीरा के साथ था । अपने बीते हुए दिनों की स्मृति को संजोते हुए नीरा असम से गंगोत्री होते हुए गोमुख तक की यात्रा को सफल बनाती हैं । इसी यात्रा का नाम है मायाबृत्त । इस यात्रा में वह जिन अजनबी लोगों से मिलती है; उनसे प्राप्त अभिज्ञताओं का वर्णन है मायाबृत्त । मानव के दोहरे जीवन-शैली का इतिहास है मायाबृत्त । और एक वाक्य में कहा जाये तो नारी के संघर्ष और आत्मविश्लेषण की कहानी है मायाबृत्त । गोमुख पहुँचने के बाद साथ आए एक साधू बाबा की वाणी ने नीरा के अंतर्द्वंद को समाप्त कर दिया,

"...माया के बंधन में रहकर भी माया को हराया जा सकता है..."[23]-

संसार की माया को छोड़कर नहीं बल्कि उस माया को जीतकर जीवन जीनेवाला ही सही अर्थ में सफल मनुष्य बन पता हैं; बाबा के इसी जीवनी-मंत्र को लेकर नीरा अपने कर्मभूमि तक लौट आती हैं ।

प्रासंगिकता:

प्रस्तुत उपन्यास में मानव जीवन के गति को दिखाया गया है । मनुष्य अपने ही घर में बेघर होता है और उसके भावनाओं के साथ किए जाने वाले खिलवाड़ को सहन कर तपता है, सिखता है, उससे अपने आप को साहसी बनाता है । ठीक उसी प्रकार जैसे सोना तपकर निखरता है...अन्याय के साथ जुझने के लिए आत्मविश्वास का होना अत्यंत जरूरी माना जाता है, जो नीरा में था । प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से वर्तमान के युवा-पीढ़ी के हृदय में आत्मप्रत्यय को जगाने का प्रयास किया गया है । साथ ही अंधविश्वास, कु-प्रथा आदि का विरोध करते हुए सच्चे मानवतावाद की प्रतिष्ठा की गई है । मनुष्य शरीर से नहीं मन से सुंदर होता है, इस सत्य को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है कथाकार ने...यह कहानी उस हर मनुष्य के लिए प्रेरणादायक हैं, जो अपने जीवन में अपनों से उपेक्षित रहें हैं; उन्हें केवल अपने भीतर के आत्मविश्वास को जगाना है और साहस के साथ समाज का सामना करना चाहिए ।

3.2 तुलनात्मक अवलोकन:

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की पटभूमि मूलतः गाँव पर केंद्रित है, केवल *विजन* ही अपवाद है । दूसरी तरफ रीता चौधुरी के उपन्यासों में पटभूमि में भिन्नता मिलती हैं; केवल गाँव या शहर नहीं, बल्कि आवश्यकता अनुसार उन्होने अपनी घटना का स्थान निर्धारण किया है । शुरुवात गाँव से हुई है अंत कही दूर शहर में...शहर की पटभूमि में कथा आगे बढ़ती है तो गाँव में कथा चरमसीमा पर पहुँचती है...आदि । कहने का तात्पर्य यही है कि मैत्रेयी पुष्पा ने जहाँ केवल ग्रामीण स्त्री की समस्या को ही मूल रूप में लिया है, वही रीता चौधुरी ने ग्राम और शहर निर्विशेष स्त्री की समस्याओं को दिखाया हैं । गौरतलब यह है कि विश्लेषित प्रत्येक उपन्यास में

नारी पर होने वाले अत्याचार व शोषण की करुण गाथा हैं । कथाओं में अन्य सभी पात्र नारी पात्रों को सशक्त बनाते हुये नजर आते हैं ।

दोनों की रचना में अंतर भी हैं । मैत्रेयी पुष्पा ने जिन बारीकियों के साथ गाँव की औरतों के दुखों को उजागर किया है, रीता चौधुरी के उपन्यासों में उनका चित्रण उसकी अपेक्षा में कम परिलक्षित होता है । दूसरी तरह शहरी दाँव-पेच का चित्रण दोनों उपन्यासकारों ने बखूबी किया है; फिरभी ऐसा प्रतीत होता है कि रीता चौधुरी के उपन्यास इस क्षेत्र में आगे निकल गई । यहाँ बात गाँव या शहर की न होकर रुचि विशेष की है; मैत्रेयी पुष्पा का मन गाँव में अधिक रमता है; सो गाँव का सुगंध उनकी लेखनी में सर्वत्र परिलक्षित है । *चाक* की नायिका सारंग की मनोस्थिति और व्यवहार का इतना सावलील वर्णन पुष्पा ने किया है कि मानो एक सीधी-भोली गाँव की बधू पाठकों के नजरों के सामने आ जाता है । उसका दुख पाठकों का दुख बन जाता हैं और उसकी मुक्ति पाठकों की प्रार्थना बन जाती हैं । रीता चौधुरी को किसी विशेष क्षेत्र से लगाव नहीं, बल्कि उन्हें हर उस क्षेत्र से लगाव हैं; जहाँ सच्चाई और ईमानदारी छिपी होती हैं । जिन परिस्थितियों में नारी को अधिक दुखों का सामना करना पड़ा, जहाँ समाज ने उसे मानवीयता की नजरिए से देखना छोड़ दिया । वही से एक नई कहानी की शुरुवात हुई । *मायाबृत* की नीरा के जरिये रीता चौधुरी ने एक ऐसे ही समाज का आकलन किया है, जहाँ सगे माँ-बाप भी स्त्री के लिए अपना न बन पाया । जिस पढ़कर पाठक अपने अपने जीवन या आसपास के जीवन से और अधिक तादात्म्य-भाव का अनुभव करने में सक्षम हो जाते हैं ।

मैत्रेयी पुष्पा और रीता चौधुरी के उपन्यासों में वर्तमान समय व समाज को जागरूक बनाने की क्षमता निहित हैं । क्योंकि यहाँ जीवन का सच है...जिस सरलता और प्रवाहमय ढंग से उनकी कथा गति पकड़ती है, पाठक मानो बह जाती हैं । जो निःसंदेह प्रशंसनीय है । इन उपन्यासों में यथार्थ का कुछ कदर संयोजन हुआ है कि पाठकों को पात्रों का दुख अपना-सा लगने लगता हैं । कथा के साथ साथ वे भी उनकी पीड़ाओं से गुजरते हैं और साथ ही अपने आस-

पास के शोषित व दुखी व्यक्तिओं की छवि उनके सामने मूर्त हो उठती हैं । कहते है रसास्वादन के बिना साहित्य अधूरा होता है, पर यहाँ तो रस साथ साथ मानवीय अनुभूति का जागरण भी संभवपर हो रहा हैं । दोनों कथाकारों के उपन्यासों में कुछ समानतायें और कुछ विरोध नज़र आते हैं; वह महज़ परिस्थितियों का फल हैं, जिसके बारें आनेवाले अध्याय में चर्चा की जाएगी । बहरहाल निष्कर्ष यही निकलता है कि दोनों उपन्यासकारों के सभी उपन्यास अत्यंत प्रासंगिक हैं ।

संदर्भ-सूची:

1. तिवारी, रामचंद्र, *हिन्दी का गद्य साहित्य,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1995, पृष्ट. सं. 148
2. पुष्पा, मैत्रेयी, *इदन्नमम,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, 2012, पृष्ट सं. 148
3. पुष्पा, मैत्रेयी, *इदन्नमम,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, 2012, पृष्ट सं. 192
4. पुष्पा, मैत्रेयी, *चाक,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ट. सं. 25
5. पुष्पा, मैत्रेयी, *विजन,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ट. सं. 212
6. पुष्पा, मैत्रेयी, *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति-2011, पृष्ट. सं. 243
7. पुष्पा, मैत्रेयी, *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति-2011, पृष्ट. सं. 22
8. पुष्पा, मैत्रेयी, *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति-2011, पृष्ट. सं.84
9. पुष्पा, मैत्रेयी, *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति-2011, पृष्ट. सं. 244
10. पुष्पा, मैत्रेयी, *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति-2011, पृष्ट. सं. 358
11. पुष्पा, मैत्रेयी, *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति-2011, पृष्ट. सं. 365
12. चौधुरी, रीता, *देउलांखुइ,* ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2005, पृष्ट. सं. 68
13. चौधुरी, रीता, *देउलांखुइ,* ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2005, पृष्ट. सं. 66

14. चौधुरी, रीता, *देउलांखुइ,* ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2005, पृष्ट. सं. 250

15. चौधुरी, रीता, *देउलांखुइ,* ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2005, पृष्ट. सं. 89

16. चौधुरी, रीता, *देउलांखुइ,* ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2005, पृष्ट. सं. 281

17. चौधुरी, रीता, *एइसमय सेइ समय,* वनलता प्रकाशन, गुवाहाटी, 2007, पृष्ट. सं. 458

18. चौधुरी, रीता, *पपीया तरार साधु,* केम्ब्रिज इंडिया, गुवाहाटी, 1998, पृष्ट. सं. 48

19. चौधुरी, रीता, *पपीया तरार साधु,* केम्ब्रिज इंडिया, गुवाहाटी, 1998, पृष्ट. सं. 314

20. चौधुरी, रीता, *पपीया तरार साधु,* केम्ब्रिज इंडिया, गुवाहाटी, 1998, पृष्ट. सं. 301

21. चौधुरी, रीता, *मायाबृत्त,* ज्योति प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, 2012, पृष्ट. सं.136

22. चौधुरी, रीता, *मायाबृत्त,* ज्योति प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, 2012, पृष्ट. 57

23. चौधुरी, रीता, *मायाबृत्त,* ज्योति प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, 2012, पृष्ट. 498